जो कोई भी अच्छा कर्म करेगा, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, बशर्ते वह ईमान वाला (मोमिन) हो, तो हम उसे अवश्य पवित्र जीवन प्रदान करेंगे और ऐसे लोगों को उनके सर्वोत्तम कर्मों के अनुसार अवश्य प्रतिफल प्रदान करेंगे। (अन्नहल : 98/16)

इस्लाम में स्त्री का स्थान

WOMAN IN ISLAM

लेखक

सर मुहम्मद ज़फ़रुल्लाह ख़ान साहिब

इस्लाम में स्त्री का स्थान

लेखक

सर मुहम्मद ज़फ़रुल्लाह ख़ान साहिब

नाम पुस्तक	: इस्लाम में स्त्री का स्थान
लेखक	: सर मुहम्मद ज़फ़रुल्लाह ख़ान साहिब
अनुवादक (उर्दू से)	: नादिया परवेज़ा (उर्दू से)
संस्करण	: प्रथम संस्करण (हिन्दी) 2025 ई०
संख्या	: 300
प्रकाशक	: नज़ारत नश्र-व-इशाअत, क़ादियान, 143516 ज़िला-गुरदासपुर (पंजाब)
मुद्रक	: फ़ज़्ले उमर प्रिंटिंग प्रेस, क़ादियान, 143516 ज़िला-गुरदासपुर (पंजाब)

Name of book	: Women in Islam
Author	: Sir Mohammad Zafarulla Khan Sahib
Translator	: Nadia Parveza
Edition	: 1st Edition (Hindi) 2025
Quantity	: 300
Publisher	: Nazarat Nashr-o-Isha'at, Qadian, 143516 Distt. Gurdaspur, (Punjab)
Printed at	: Fazl-e-Umar Printing Press, Qadian 143516 Distt. Gurdaspur (Punjab)

प्रकाशक की ओर से

सर मुहम्मद ज़फ़रुल्लाह ख़ान साहिब (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की अध्यक्षता करने वाले पहले एशियाई) द्वारा लिखित पुस्तक 'इस्लाम में स्त्री का स्थान' असल में मूल रूप से अंग्रेजी भाषा में है। इसका यह हिन्दी अनुवाद नादिया परवेज़ा ने किया है। इसके बाद आदरणीय शेख़ मुजाहिद अहमद शास्त्री (सदर रिव्यू कमेटी), आदरणीय फ़रहत अहमद आचार्य (इंचार्ज हिन्दी डेस्क), आदरणीय अली हसन एम. ए. आदरणीय इब्नुल मेहदी एम् ए और आदरणीय मुहियुद्दीन फ़रीद एम् ए, आदरणीय इब्राहीम सर्वर, आदरणीय तबरेज़ दुर्रानी ने इसका रीव्यू किया है। अल्लाह तआला इन सब को उत्तम प्रतिफल प्रदान करे।

इस पुस्तक को हज़रत ख़लीफ़तुल मसीह ख़ामिस अय्यदहुल्लाहु तआला बिनस्त्रिहिल अज़ीज़ (जमाअत अहमदिया के वर्तमान ख़लीफ़ा) की अनुमति से हिन्दी प्रथम संस्करण के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

विनीत
हाफ़िज़ मख़दूम शरीफ़
नाज़िर नश्र व इशाअत क़ादियान

विषय सूची

क्र सं	विषय	पृष्ट संख्या
1	इस्लाम में स्त्री का स्थान	1
2	आध्यात्मिक समानता (रूहानियत में बराबरी)	4
3	पुरुष और स्त्री के विभिन्न कार्यक्षेत्र	10
4	निकाह (विवाह)	12
5	पति-पत्नी के कर्तव्य	15
6	तलाक़ (विवाह विच्छेद)	19
7	बहुविवाह	30
8	माँ	34
9	आर्थिक दृष्टि से महिलाओं की स्थिति	36
10	पुरुषों और महिलाओं की सुरक्षा	42

प्रस्तावना

कई समाजों में, एक महिला को अभी भी दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है और बहुत सारे ऐसे मौलिक अधिकार जिनका पुरुष आनंद उठाते हैं उनसे महिलाओं वंचित किया जाता है। इस भेदभाव से गहरा आक्रोश होने के कारण, उन्होंने अपने लिए एक समान दर्जा प्राप्त करने की लड़ाई लड़ी है, जो दुर्भाग्य से आज तक उन्हें बहुत सारे आधुनिक पश्चिमी राज्यों में नहीं मिल पाया है। जबकि आधुनिक समाज में पेंडुलम चरम सीमा पर पहुंच गया है और अनैतिकता का रास्ता खोल दिया है, पश्चिमी देशों ने अक्सर इस्लामी महिलाओं को पुरुष-प्रधान दुनिया में पिछड़ा हुआ माना है। इसके विपरीत, इस्लाम पहला धर्म था जिसने महिलाओं को औपचारिक रूप से एक ऐसा दर्जा दिया जो पहले कभी नहीं देखा गया था। इस्लाम के पवित्र ग्रंथ पवित्र कुरान में सैकड़ों शिक्षाएँ हैं, जो पुरुषों और महिलाओं दोनों पर समान रूप से लागू होती हैं। इस्लाम द्वारा प्रचारित पुरुषों और महिलाओं की नैतिक, आध्यात्मिक और आर्थिक समानता निर्विवाद है। पवित्र कुरान की विशेष आयतें, जो पुरुषों या महिलाओं को संबोधित करती हैं, या तो उनके शारीरिक अंतरों से संबंधित हैं या इस्लाम द्वारा परिकल्पित समाज के नैतिक ताने-बाने की रक्षा में उनकी भूमिका से संबंधित हैं। यह छोटी पुस्तिका, जो काफी हद तक मूल कुरानिक शिक्षाओं पर आधारित है, मुस्लिम महिलाओं द्वारा प्राप्त अधिकारों, इस्लाम के अनुसार उनके कार्यों की विविधता, विवाह, तलाक और बहुविवाह की अवधारणाओं और इस्लाम में सामाजिक और नैतिक मूल्यों को कैसे संरक्षित किया जाता है, से संबंधित है। मैं मुहम्मद

ज़फ़रुल्लाह खान का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने पश्चिमी देशों द्वारा गलत समझे गए विषय पर एक ग्रंथ लिखा है।

शेख मुबारक अहमद

इमाम, लंदन मस्जिद

इस्लाम में स्त्री का स्थान

पुरुष और स्त्री के बीच आपसी संबंधों के लिए नियम-क़ानून बनाने की ख़ुदाई योजना में इस्लाम ने महिला को एक सम्मानित तथा गरिमापूर्ण स्थान प्रदान किया है। ऐसे लाभकारी नियम-क़ानून, अमन-शांति, आराम, प्रसन्नता, मानवजाति की प्रगति के लिए आवश्यक हैं।

क़ुर्आन मजीद इस पर बात ज़ोर देता है कि चूंकि ख़ुदा तआला ने अपनी सर्वश्रेष्ठ युक्ति द्वारा सभी प्रजातियों को जोड़े-जोड़े में पैदा किया है और ऐसे ही पुरुष और स्त्री का जन्म भी एक ही प्रजाति से है। अल्लाह तआला फ़रमाता है :

خَلَقَكُم مِّن نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ ثُمَّ جَعَلَ مِنْهَا زَوْجَهَا

(अज़्-ज़ुमर : 39/7)

अर्थात "उसने तुम्हें एक जान से पैदा किया। फिर उसी में से उसने उसका जोड़ा बनाया।"

جَعَلَ لَكُم مِّنْ أَنفُسِكُمْ أَزْوَاجًا

(अश्शूरा- 42/12)

अर्थात "उसने तुम में से ही तुम्हारे साथी बनाए हैं।"

يَا أَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوا رَبَّكُمُ الَّذِي خَلَقَكُم مِّن نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيرًا وَّنِسَاءً (अन्निसा : 4/2)

अर्थात् "हे लोगो! अपने रब्ब का तक़्वा धारण करो जिसने तुम्हें एक ही जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया और फिर दोनों में से पुरुषों और स्त्रियों को बहुसंख्या में फैला दिया।"

هُوَ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّجَعَلَ مِنْهَا زَوْجَهَا
لِيَسْكُنَ اِلَيْهَا (अल्-आराफ़ : 7/190)

अर्थात् "वही है जिसने तुम्हें एक जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया है ताकि वह सन्तुष्टि के लिए उसकी ओर आकृष्ट हो।"

وَمِنْ اٰيٰتِهٖۤ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْۤا
اِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً ؕ اِنَّ فِىْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ
يَّتَفَكَّرُوْنَ ۝٢٢ (अर्-रूम : 30/22)

अर्थात् "और उसके चिन्हों (निशानों) में से (यह चिन्ह भी) है कि उसने तुम्हारे लिए तुम्हारे ही वर्ग में से जोड़े बनाए ताकि तुम सन्तुष्टि (प्राप्त करने) के लिए उनकी ओर जाओ और उसने तुम्हारे बीच प्रेम और दया पैदा कर दिया। नि:सन्देह इसमें ऐसे लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं बहुस से निशान हैं।"

इस्लामी शिक्षानुसार ख़ुदा तआला द्वारा मनुष्य को शक्तियां प्रदान की गई हैं वे फ़ज़ल के तौर पर हैं और इसलिए प्रदान की गई हैं कि उनका सदुपयोग (लाभ पहुंचाने के लिए) किया जाए।

وَاللّٰهُ اَخْرَجَكُمْ مِّنْۢ بُطُوْنِ اُمَّهٰتِكُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ شَيْـًٔا ۙ وَّجَعَلَ
لَكُمُ السَّمْعَ وَالْاَبْصَارَ وَالْاَفْـِٕدَةَ ۙ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝٧٩
(अन्-नहल : 16/79)

अर्थात "और अल्लाह ने तुम्हें तुम्हारी माताओं के पेटों से पैदा किया जब कि तुम कुछ नहीं जानते थे। और उसने तुम्हारे लिए कान और आँखें और दिल बनाए ताकि तुम कृतज्ञता प्रकट करो।"

अर्थात् उन (शक्तियों तथा क्षमताओं) का उचित समय व उचित अवसर पर प्रयोग किया जाए। ऐसी स्थिति में वह प्रोत्साहित होंगी और विकसित होंगी। लेकिन उनकी उपेक्षा करना और उनका दुरुपयोग करना ख़ुदा के क्रोध को आकर्षित करने के समान है।

कुछ धार्मिक फ़िर्क़े (संप्रदाय) ग़लती से वैवाहिक जीवन को ब्रह्मचार्य (संन्यासी जीवन) को आध्यात्मिक रूप से सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। हालांकि इस्लाम सन्यास लेने को अस्वीकार करता है और उसकी निंदा करता है। क़ुर्आन मजीद फ़रमाता है-

وَرَهْبَانِيَّةً ابْتَدَعُوهَا مَا كَتَبْنَاهَا عَلَيْهِمْ إِلَّا ابْتِغَاءَ رِضْوَانِ اللَّهِ فَمَا رَعَوْهَا حَقَّ رِعَايَتِهَا (अल् हदीद - 57/28)

अर्थात "और उन्होंने ब्रह्मचार्य को धारण कर लिया, जिसे उन्होंने स्वयं गढ़ लिया और हमने उन पर वह (ब्रह्मचार्य) अनिवार्य नहीं किया था (भले ही) उन्होंने अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए यह तरीक़ा अपनाया था परन्तु इसका पूरा लिहाज़ (हक़) अदा न किया।"

ब्रह्मचर्य जीवन (वैरागी जीवन) का यह दृष्टिकोण इस विचार के कारण उत्पन्न हुआ है कि स्त्री पुरुष की तुलना में निम्न प्रकार की रचना है तथा उसके साथ जुड़ना (संबंधित होना) अपमानजनक और नैतिक गिरावट का कारण (साधन) है। चर्च के पादरियों ने

मनुष्य को स्वर्ग से निकाले जाने का ज़िम्मेदार स्त्री को ठहराया है और उसे आत्मविहीन रूप में प्रस्तुत करके शैतान का हथियार बताया है।

इस्लाम ने ऐसे दृष्टिकोण (नज़रिये) की निंदा की है और स्त्री को पुरुषों के समान आध्यात्मिक स्तर (मरतबे) तक पहुंचाया है। इस्लाम ने पुरुष और स्त्री दोनों को एक दूसरे के लिए आवश्यक (अनिवार्य) और परस्पर एक दूसरे की पूर्णता का माध्यम क़रार दिया है। उदाहरण के तौर पर क़ुर्आन कहता है :

هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَاَنْتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ

(अल-बक़रः 2/188)

अर्थात "वे तुम्हारे लिए एक (प्रकार के) वस्त्र हैं और तुम उनके लिए एक (प्रकार का) वस्त्र हो।"

आध्यात्मिक समानता (रूहानियत में बराबरी)

पवित्र क़ुर्आन बार-बार इस बात पर ज़ोर देता है कि स्त्री को रूहानीयत में पुरुष के साथ समानता प्राप्त है। जैसा कि वह कहता है :-

اِنَّ الْمُسْلِمِيْنَ وَالْمُسْلِمٰتِ وَالْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْقٰنِتٰتِ وَالصّٰدِقِيْنَ وَالصّٰدِقٰتِ وَالصّٰبِرِيْنَ وَالصّٰبِرٰتِ وَالْخٰشِعِيْنَ وَالْخٰشِعٰتِ وَالْمُتَصَدِّقِيْنَ وَالْمُتَصَدِّقٰتِ وَالصَّآئِمِيْنَ وَالصّٰٓئِمٰتِ وَالْحٰفِظِيْنَ فُرُوْجَهُمْ وَالْحٰفِظٰتِ وَالذّٰكِرِيْنَ اللّٰهَ كَثِيْرًا وَّالذّٰكِرٰتِ ۙ اَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّاَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٣٦﴾

(अल-अहज़ाब- 33/36)

अर्थात "निःसन्देह मुसलमान पुरुष और मुसलमान स्त्रियाँ और मोमिन पुरुष और मोमिन स्त्रियाँ और आज्ञाकारी पुरुष और आज्ञाकारिणी स्त्रियाँ और सत्यवादी पुरुष और सत्यवादिनी स्त्रियाँ और धैर्यशील पुरुष और धैर्यशीला स्त्रियाँ और विनम्र पुरुष और विनम्र स्त्रियाँ और दान करने वाले पुरुष और दान करने वाली स्त्रियाँ और रोज़ा रखने वाले पुरुष और रोज़ा रखने वाली स्त्रियाँ और अपने गुप्तांगों की सुरक्षा करने वाले पुरुष और स्त्रियाँ और अल्लाह को अधिकता से याद करने वाले पुरुष और अधिकता से याद करने वाली स्त्रियाँ, अल्लाह ने इन सब के लिए क्षमादान और महान प्रतिफ़ल तैयार किए हुए हैं।"

अतः पुरुष और स्त्री दोनों को समान सुरक्षा प्रदान की गई है। जैसा कि वह कहता है :-

وَيَتُوْبَ اللّٰهُ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿۷۳﴾ (अल-अहज़ाब- 33/74)

अर्थात "और मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों पर कृपा की। और अल्लाह बहुत क्षमा करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है।"

क़ुर्आन मजीद में हुदैबिया में होने वाली (घटनाओं) का विवरण इस प्रकार है-

وَالَّذِيْنَ يُؤْذُوْنَ الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ بِغَيْرِ مَا اكْتَسَبُوْا فَقَدِ احْتَمَلُوْا بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿۵۸﴾ (अल-अहज़ाब- 33/59)

अर्थात "और वे लोग जो मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों

को बिना उस (अपराध) के जो उन्होंने किया हो कष्ट पहुँचाते हैं तो (मानो) उन्होंने एक बड़े दोषारोपण और खुल्लम-खुल्ला पाप का बोझ (अपने ऊपर) उठा लिया।"

إِنَّ الَّذِينَ فَتَنُوا الْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنَاتِ ثُمَّ لَمْ يَتُوبُوا فَلَهُمْ عَذَابُ جَهَنَّمَ وَلَهُمْ عَذَابُ الْحَرِيقِ (अल्-बरूज- 85/11)

अर्थात् "निस्सन्देह वह लोग जिन्होंने मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों को आज़माइश में डाला फिर प्रायश्चित नहीं किया तो उनके लिए नर्क का अज़ाब है और उनके लिए आग का अज़ाब (निश्चित) है।"

क्योंकि महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक असुरक्षित हैं इसलिए उन्हें विशेष सुरक्षा प्रदान की गई है।

إِنَّ الَّذِينَ يَرْمُونَ الْمُحْصَنَاتِ الْغَافِلَاتِ الْمُؤْمِنَاتِ لُعِنُوا فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ ۔ يَوْمَ تَشْهَدُ عَلَيْهِمْ أَلْسِنَتُهُمْ وَأَيْدِيهِمْ وَأَرْجُلُهُمْ بِمَا كَانُوا يَعْمَلُونَ (अन्-नूर- 24/24-25)

अर्थात् "निस्सन्देह वे लोग जो पवित्र (सतवंती), बेख़बर मोमिन स्त्रियों पर मिथ्यारोप लगाते हैं, (वे) इस लोक में भी लानत किए गए और परलोक में भी। और उनके लिए बहुत बड़ा अज़ाब निर्धारित है। वह दिन (याद करो) जब उनकी ज़बानें और उनके हाथ और उनके पाँव उनके विरुद्ध उन बातों की गवाही देंगे जो वह किया करते थे।"

परलोक (आख़िरत) में पुरुष और स्त्री को समान पुरुस्कार (ईनाम) प्राप्त होगा।

وَمَنْ يَعْمَلْ مِنَ الصَّالِحَاتِ مِنْ ذَكَرٍ أَوْ أُنْثَىٰ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَأُولَٰئِكَ يَدْخُلُونَ الْجَنَّةَ وَلَا يُظْلَمُونَ نَقِيرًا (अन्निसा- 4/125)

अर्थात् "और पुरुषों में से अथवा स्त्रियों में से जो नेक कर्म करे और वह मोमिन हो तो यही वे लोग हैं जो स्वर्ग में प्रविष्ट होंगे और उन पर खजूर की गुठली के छेद के समान भी अत्याचार नहीं किया जाएगा।"

مَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً طَيِّبَةً ۚ وَلَنَجْزِيَنَّهُمْ اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ

(अन्-नहल- 98)

अर्थात् "पुरुष या स्त्री में से जो भी पुण्य कर्म करेगा बशर्ते कि वह मोमिन हो, तो उसे हम निस्सन्देह एक जीवन के रूप में जीवित कर देंगे। और उन्हें अवश्य उनका उत्कृष्ट कर्मों के अनुसार बदला देंगे जो वे करते रहे।"

وَمَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ يُرْزَقُوْنَ فِيْهَا بِغَيْرِ حِسَابٍ (अल्-मोमिन - 41)

अर्थात् "और पुरुष और स्त्री में से जो भी नेकी करेगा बशर्ते कि वह मोमिन होगा, तो यही वे लोग हैं जो स्वर्ग में प्रविष्ट होंगे। और उनको बिना किसी हिसाब के पुरुस्कार दिया जाएगा।"

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَيُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿۷۱﴾ وَعَدَ اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا وَمَسٰكِنَ طَيِّبَةً فِيْ جَنّٰتِ عَدْنٍ ؕ وَرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ ذٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿۷۲﴾ (अत्तौबा- 9/71-72)

अर्थात् "मोमिन पुरुष और मोमिन स्त्रियाँ एक दूसरे के मित्र हैं। वे अच्छी बातों का आदेश देते हैं और बुरी बातों से रोकते हैं। और नमाज़ को क़ायम करते हैं और ज़कात अदा करते हैं। और अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करते हैं। यही हैं जिन पर अल्लाह अवश्य कृपा करेगा। निस्सन्देह अल्लाह पूर्ण प्रभुत्व वाला (और) परम विवेकशील है। अल्लाह ने मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों से ऐसे स्वर्गों का वादा किया है जिनके दामन में नहरें बहती होंगी। वे उनमें सदा रहने वाले हैं। इसी प्रकार बहुत पवित्र निवास स्थानों का भी जो सदा रहने वाले स्वर्गों में स्थित होंगे। तथापि अल्लाह की प्रसन्नता सब से बढ़ कर है। यही बहुत बड़ी सफ़लता है।

لِّيُدْخِلَ الْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنَٰتِ جَنَّٰتٍ تَجْرِى مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَٰرُ خَٰلِدِينَ فِيهَا وَيُكَفِّرَ عَنْهُمْ سَيِّـَٔاتِهِمْ ۚ وَكَانَ ذَٰلِكَ عِندَ اللَّهِ فَوْزًا عَظِيمًا ﴿٦﴾

(अल-फ़तह- 48/6)

अर्थात् "(मोमिनों का ईमान बढ़ाना) इसलिए होगा ताकि वह मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों को ऐसे स्वर्गों में प्रविष्ट करे जिनके दामन में नहरें बहती हैं वे उनमें सदा रहने वाले होंगे। और वह उनसे उनकी बुराइयाँ दूर कर देगा। और अल्लाह के निकट यह एक बहुत बड़ी सफ़लता है।

فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ أَنِّى لَآ أُضِيعُ عَمَلَ عَٰمِلٍ مِّنكُم مِّن ذَكَرٍ أَوْ أُنثَىٰ ۖ بَعْضُكُم مِّنۢ بَعْضٍ (आले इम्रान- 3/196)

अर्थात् "अतः उनके रब्ब ने उनकी दुआ स्वीकार कर ली (और कहा) कि मैं तुम में से किसी कर्म करने वाले का कर्म कदापि

निष्फल नहीं करूँगा चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री। तुम एक दूसरे से संबंध रखते हो।"

يٰعِبَادِ لَا خَوْفٌ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ وَلَآ اَنْتُمْ تَحْزَنُوْنَ - اُدْخُلُوا الْجَنَّةَ اَنْتُمْ وَاَزْوَاجُكُمْ تُحْبَرُوْنَ ﴿٧١﴾ (अल् ज़ुख़रुफ़- 43/69-71)

अर्थात "(अल्लाह कहेगा) हे मेरे बन्दो! आज तुम पर न कोई भय होगा और न तुम शोकग्रस्त होगे। तुम और तुम्हारे साथी भी खुशियां मनाते हुए जन्नत में प्रविष्ट कर जाओ।"

اِنَّ اَصْحٰبَ الْجَنَّةِ الْيَوْمَ فِيْ شُغُلٍ فٰكِهُوْنَ ﴿٥٦﴾ هُمْ وَاَزْوَاجُهُمْ فِيْ ظِلٰلٍ عَلَى الْاَرَآئِكِ مُتَّكِـُٔوْنَ ﴿٥٧﴾ لَهُمْ فِيْهَا فَاكِهَةٌ وَّلَهُمْ مَّا يَدَّعُوْنَ ﴿٥٨﴾

(अल-यासीन - 36/56-58)

"नि:सन्देह स्वर्ग निवासी उस दिन एक महत्वपूर्ण कार्य (अर्थात् अल्लाह की प्रशंसा) में व्यस्त होंगे और (अपनी हालत को देख कर) प्रसन्नत हो रहे होंगे। वह भी और उसके साथी भी छायों में पलंगों पर तकिए लगाए होंगे। उनके लिए उसमें फल होगा और उनके लिए वह सब कुछ होगा जिसकी वे इच्छा करेंगे।"

يَوْمَ تَرَى الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ يَسْعٰى نُوْرُهُمْ بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَبِاَيْمَانِهِمْ بُشْرٰكُمُ الْيَوْمَ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۭ ذٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿١٣﴾ (अल्-हदीद - 57/13)

"जिस दिन तू मोमिन पुरुषों और मोमिन स्त्रियों को देखेगा कि उनका नूर उनके आगे-आगे और उनके दाहिनी ओर तेज़ी से चल रहा है। (और ख़ुदा और उसके फ़रिश्ते कहेंगे) तुम्हें आज के दिन ऐसे स्वर्ग मुबारक हों जिनके दामन में नहरें बहती हैं। वे उनमें सदा

रहने वाले होंगे। यही बहुत बड़ी सफ़लता है।"

हज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को मोमिन स्त्रियों और मोमिन पुरुषों दोनों के लिए क्षमा याचना करने का निर्देश दिया गया है।

وَاسْتَغْفِرْ لِذَنْۢبِكَ وَلِلْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ

(मुहम्मद- 47/20)

पुरुष और स्त्री के विभिन्न कार्यक्षेत्र

ख़ुदा की व्यवस्था के सभी पहलू युक्तिपूर्ण (हिकमत से भरे हुए) होते हैं। निस्संदेह आध्यात्मिकता (रूहानीयत) में पुरुष और महिलाएं समान रूप से भागीदार हैं और ख़ुदा के पुरुस्कार व सम्मान की प्राप्ति में भी समान रूप से भागीदार हैं। लेकिन उनके कार्य क्षेत्र समान नहीं हैं। इसी अनुकूलता के कारण उनकी क्षमताओं व योग्यताओं में अंतर पाया जाता है। इस संबंध में क़ुर्आन मजीद फ़रमाता है :

قَالَ رَبُّنَا الَّذِيْٓ اَعْطٰى كُلَّ شَيْءٍ خَلْقَهٗ ثُمَّ هَدٰى

(सूरह ताहा- 20/51)

अर्थात "हमारा रब्ब वह है जिसने प्रत्येक वस्तु को उसकी आकृति प्रदान की उसे अंग प्रदान किए और फिर उन (अंगों) से कार्य करने का तरीका सिखाया।"

فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِيْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا ۭ لَا تَبْدِيْلَ لِخَلْقِ اللّٰهِ

(अर्-रोम- 30/31)

अर्थात "अल्लाह की (पैदा की हुई) फितरत को धारण कर जिसके अनुरूप उसने मनुष्यों को पैदा किया है। अल्लाह की सृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।"

पुरुष को महिला में बदलने और महिला को पुरुष में बदलने के सभी प्रयास विनाशकारी और व्यर्थ हैं। पुरुष और महिला के विशेष (उचित) कार्य क्षेत्र हैं जिसका उचित निर्वाहन जीवन को सुंदर, आनदंमय, गरिमामय (सम्मानित) तथा पूर्ण बनाता है।

पुरुषों और महिलाओं को दी गई अलग-अलग क्षमताओं को देखने से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति ने उनके कार्यों का दायरा (क्षेत्र) भी अलग-अलग रखा है। उदाहरण के तौर पर महिला में गर्भधारण करने की क्षमता होती है जबकि पुरुष में नहीं। इसी प्रकार अपनी क्षमताओं की दृष्टि से पुरुष युद्ध क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त है, हालांकि स्त्री को फ़ौज की ज़िम्मेदारी सौंपना मानो मृत्यु को आमंत्रित करना है। यह कोई श्रेष्ठता या हीनता का प्रश्न नहीं, यह प्राकृतिक क्षमता और उसके उचित उपयोग का प्रश्न है।

गर्भधारण करने की वास्तविक भूमिका निभाने में महिलाओं पर कुछ पाबन्दियाँ लगती हैं जिनसे पुरुष आज़ाद होते हैं। लेकिन माँ होने का गोरवशाली सम्मान केवल महिलाओं के लिए विशिष्ट है, पुरुष उसकी इच्छा नहीं कर सकता। शुरू के वर्षों में बच्चे के पालन-पोषण में माँ मुख्य रूप से ज़िम्मेदार होती है। इस स्तर पर पिता की भूमिका माँ की तुलना में कुछ कम हो जाती है। उस समय बच्चा स्वाभाविक रूप से पोषण और आराम के लिए पिता से अधिक माँ की ओर आकर्षित (झुकता) होता है। जब माँ द्वारा बच्चे को डांटा जाता है या अनुशासित किया जाता है तो वह उससे रूठता नहीं जबकि पिता द्वारा दंडित किए जाने पर वह रूठ जाता है। प्रकृति ने माँ और बेटे के बीच जो संबंध बनाया है उसमें करुणा का पहलू पिता और बेटे के रिश्ते की अपेक्षा

कहीं अधिक होता है।

एक महिला कमज़ोर होती है उसे सहारे (समर्थन) तथा सुरक्षा के लिए पुरुष की ताक़त की ज़रूरत होती है। एक महिला को उसकी इच्छा के विरुद्ध मजबूर किया जा सकता है, परन्तु पुरुष को उसकी इच्छा के विरुद्ध मजबूर नहीं किया जा सकता।

एक पत्नि और माँ के रूप में महिला की गतिविधियों (कामों) का प्राथमिक और सामान्य कार्यक्षेत्र (दायरा) घर है। और कमाने वाले के रूप में पुरुष की गतिविधियों और कार्यों का सामान्य क्षेत्र घर से बाहर है। तथा सामाजिक व्यवस्था जो युक्ति (विवेक) और परोपकार (कृपा) पर आधारित है, दोनों के बीच सामंजस्य और संतुलन बनाए रखती है। और यही इस्लाम का दावा है।

निकाह (विवाह)

इस्लाम में विवाह का सर्वोच्च उद्देश्य ख़ुदा की प्रसन्नता प्राप्त करना है जो कि परहेज़गारी (पाकदामनी), पूर्ण सन्तुष्टि, संतानोत्पत्ति के माध्यम से प्राप्त हो। उदाहरणतया सच्चे मोमिन के जो गुण बताए गए हैं जैसा कि वह विनम्रतापूर्वक नमाज़ पढ़ता है, बुरी बातों से बचता है, ज़कात देता है, अपने अनुबंधों का पालन करता है। इसके साथ ही विवाह के माध्यम से पाकदामनी (सतीत्व) की सुरक्षा पर भी बल दिया गया है।

أُولَٰئِكَ هُمُ الْوَارِثُونَ ﴿١١﴾ الَّذِينَ يَرِثُونَ الْفِرْدَوْسَ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿١٢﴾ (अल्-मोमिनून- 23/11,12)

अर्थात "यहीं हैं वे जो वारिस बनने वाले हैं। (अर्थात्) वे जो

फ़िरदौस (स्वर्ग) के वारिस होंगे। वे उसमें सदा रहने वाले हैं।

फिर यह आदेश देता है कि -

وَاَنْكِحُوا الْاَيَامٰى مِنْكُمْ وَالصّٰلِحِيْنَ مِنْ عِبَادِكُمْ وَاِمَآئِكُمْ ۚ اِنْ يَّكُوْنُوْا فُقَرَآءَ يُغْنِهِمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۚ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٣٣﴾

(सूरह अन्नूर- 24/33)

अर्थात "और तुम्हारे बीच जो विधवाएँ हैं उनके भी विवाह कराओ, इसी प्रकार जो तुम्हारे दासों एवं दासियों में से सच्चरित्र हों उनका भी विवाह कराओ। यदि वे निर्धन हों तो अल्लाह अपनी कृपा से उन्हें धनवान बना देगा।"

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया निकाह (विवाह) मेरी सुन्नत है। जो कोई मेरी सुन्नत से मुंह फेरता है (विमुख होता है) वह हम में से नहीं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि यूरोप परहेज़गारी (पाकदामनी) को एक गुण नहीं मानते। निश्चित रूप से यह उनकी एक बुराई बन गई है बिना विवाह के एक साथ रहना और मेलमिलाप रखना अब सामान्य बात हो गई है। वासना और कामुकता को, चाहे विवाह में रहते हुए हो या उससे बाहर रहते हुए यौन संबंधों का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। महिला के स्तर को इतना गिरा दिया गया है कि उसे केवल वासना का एक साधन मात्र बना दिया गया है।

इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार पति-पत्नी के बीच रिश्ता सदव्यवहार से भरा होना चाहिए। क़ुर्आन मजीद कहता है -

وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْئًا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا ﴿٢٠﴾ (अन्निसा- 4/20)

"उनके साथ सदव्यवहार करते हुए जीवन बिताओ। और यदि तुम उन्हें नापसन्द करो तो संभव है कि तुम किसी को नापसन्द करो और अल्लाह उसमें बहुत भलाई रख दे।"

वैवाहिक संबंधों की प्रकृति का अनुमान आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहिव वसल्लम के इस निर्देश से लगाया जा सकता है जिसमें आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं कि जब तुम दोनों एकांत में मिलो तो यह दुआ करो कि हे अल्लाह हमें शैतान से सुरक्षित रख और हमारी संतान को भी, जो तू हमें प्रदान करे।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि क़ुर्आन मजीद में पति और पत्नी को एक दूसरे के लिए वस्त्रों के रूप में वर्णित किया है। अर्थात् वह दोनों परस्पर सुरक्षा, श्रेष्ठता तथा पवित्रता के साधन हैं। इस्लाम में वैवाहिक जीवन (दांपत्य जीवन) के सभी विषय नैतिक और आध्यात्मिक चेतना के इतने उच्च स्तर पर हैं कि जहां वासना का कोई स्थान नहीं है। निम्नलिखित आयतों में उपदेशों एवं निर्देशों द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट है-

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ ؕ قُلْ هُوَ اَذًى ۙ فَاعْتَزِلُوا النِّسَآءَ فِي الْمَحِيْضِ ۙ وَلَا تَقْرَبُوْهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ ۚ فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوْهُنَّ مِنْ حَيْثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ﴿۲۲۳﴾ نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ ۠ فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ ۫ وَقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ مُّلٰقُوْهُ ؕ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿۲۲۴﴾

(अल्-बक़रह 2/223-224)

"और वे तुझ से मासिक धर्म (माहवारी) की अवस्था के बारे

में प्रश्न करते हैं। तू कह दे कि यह एक कष्टदायक (अवस्था) है। अतः मासिक धर्म के समय स्त्रियों से अलग रहो और उन से शारीरिक संबंध स्थापित न करो जब तक कि वे पवित्र न हो जाएं। फिर जब वे पवित्र हो जाएं तो उनके निकट उसी प्रकार जाओ जैसा कि अल्लाह ने तुम्हें आदेश दिया है। निःसन्देह अल्लाह प्रायश्चित करने वालों से प्रेम करता है और पवित्र रहने वालों से (भी) प्रेम करता है। तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी खेतियाँ हैं। अतः अपनी खेतियों के निकट जैसे चाहो जाओ और अपने लिए (कुछ) आगे भेजो। और अल्लाह से डरो और जान लो कि तुम उससे अवश्य मिलने वाले हो और मोमिनों को (इस बात की) ख़ुश ख़बरी दे दे।

इस प्रकार कोई भी ऐसा व्यवहार जो पत्नी की क्षमताओं और गर्भधारणा की संभावनाओं (क्षमताओं) पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो उससे रोका गया है। पवित्रता तथा तक़्वा (संयम) को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ
وَّاجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ﴿٧٥﴾ (अल्-फ़ुर्क़ान- 25/75)

"हे हमारे रब्ब हमें अपने जीवन-साथियों से और अपनी संतान से आँखों की ठंडक प्रदान कर और हमें मुत्तक़ियों का इमाम बना दे।

पति-पत्नी के कर्तव्य

इस्लाम की व्यवस्था में निकाह एक सामाजिक अनुबंधन है जिसमें आपसी दायित्वों (ज़िम्मेदारियों) का एक पूरा ढांचा मौजूद है। इसकी मज़बूती के लिए एक ऐलान-ए-आ'म के माध्यम से

लड़का-लड़की की रज़ामंदी का इज़हार, लड़की के अभिभावक की सहमति (जिसका कर्तव्य दुल्हन के अधिकारों को सुनिश्चित करना और उनकी रक्षा करना है) और पति द्वारा अपनी आय के अनुसार निर्धारित हक़-मेहर देना अनिवार्य होता है। यह भी याद रखना चाहिए कि इस मेहर को लड़की के माता-पिता द्वारा दिए गए दहेज के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।

किस किस से विवाह करना मना है यह स्पष्ट रूप से बता दिए गए हैं और उसके बाद निम्नलिखित आदेश है-

أُحِلَّ لَكُم مَّا وَرَآءَ ذَٰلِكُمْ أَن تَبْتَغُوا بِأَمْوَالِكُم مُّحْصِنِينَ غَيْرَ مُسَافِحِينَ ۚ فَمَا اسْتَمْتَعْتُم بِهِ مِنْهُنَّ فَآتُوهُنَّ أُجُورَهُنَّ فَرِيضَةً ۚ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيمَا تَرَاضَيْتُم بِهِ مِن بَعْدِ الْفَرِيضَةِ ۚ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿٢٥﴾ (अन्निसा- 4/25)

अर्थात "तुम्हारे लिए हलाल (जाइज़) है कि जो इन श्रेणियों से बाहर हैं उनसे विवाह कर लो और अपने धन (हक़ मेहर) के द्वारा, अपने चरित्र की सुरक्षा करते हुए न कि ककुर्म का मार्ग अपनाते हुए। अतः उनको उनके हक़ मेहर इस आधार पर कि तुम उनसे लाभ उठा चुके हो, अनिवार्य रूप से अदा करो। और तुम पर इस विषय में कोई गुनाह नहीं कि तुम मेहर निर्धारित होने के बाद किसी बात पर परस्पर सहमत हो जाओ। निस्संदेह अल्लाह स्थायी ज्ञान रखने वाला (और) परम विवेकशील है।"

यद्यपि पति-पत्नि का एक दूसरे के प्रति पारस्परिक दायित्व होता है परन्तु चूंकि पुरुष के कमाने वाला होने की हैसियत से और पत्नी

तथा परिवार की देख-रेख और भरण-पोषण का ज़िम्मेदार होने की हैसियत से, घर चलाने के मामले में मतभेद होने पर उसके निर्णय को अंतिम निर्णय माना जाता है। ताकि कहीं ऐसा न हो कि मामला हाथ से निकल जाए और परिवार बर्बाद हो जाए।

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِیْ عَلَیْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۪ وَلِلرِّجَالِ عَلَیْهِنَّ دَرَجَةٌ
وَاللّٰهُ عَزِیْزٌ حَكِیْمٌ ﴿۲۲۹﴾ (अल-बक़रह- 2/229)

अर्थात "जिस प्रकार उन (स्त्रियों) पर कुछ ज़िम्मेदारियां हैं (उसी प्रकार) विधि के अनुसार उन्हें भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं। हां हालांकि पुरुषों को उन पर एक प्रकार की प्रधानता भी है। और अल्लाह पूर्ण प्रभुत्व वाला (और) परम विवेकशील है।"

स्त्री की शारीरिक कमज़ोरी और दुर्बलता तथा उनकी असुरक्षा को देखते हुए पुरुषों को महिलाओं का संरक्षक बनाया गया है।

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ
وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ؕ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَیْبِ
بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ (अन्निसा- 4/35)

अर्थात "पुरुष स्त्रियों पर उस श्रेष्ठता के कारण निगरान हैं जो अल्लाह ने उनमें से कुछ को कुछ पर प्रदान की है और इस कारण से भी कि वे अपने धन (उन पर) ख़र्च करते हैं। अतः नेक स्त्रियाँ आज्ञाकारिणी होती हैं और अल्लाह की मदद से उन चीज़ों की सुरक्षा करने वाली होती हैं जो उनके पतियों ने उनसे साझा की हैं।

यदि पत्नी नाफ़रमानी (अवज्ञा) करे जिससे घर का शांतिपूर्ण माहौल खराब हो जाता है तो पति को चाहिए कि उसे समझाए।

फिर उसके समझाने का भी यदि औरत पर कोई असर न हो तो अस्थायी रूप से बिस्तर से अलगाव किया जा सकता है। अंतिम उपाय के तौर पर हल्की सी सज़ा भी दी जा सकती है।

وَاِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْۢ بَعْلِهَا نُشُوْزًا اَوْ اِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يُّصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا ؕ وَالصُّلْحُ خَيْرٌ ؕ وَاُحْضِرَتِ الْاَنْفُسُ الشُّحَّ ؕ وَاِنْ تُحْسِنُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿١٢٩﴾ (अन्निसा: 4/129)

अर्थात "और यदि कोई स्त्री अपने पति से अभद्र व्यवहार अथवा या उपेक्षा भाव का डर हो तो उन दोनों पर कोई पाप तो नहीं कि अपने बीच सुधार करते हुए सुलह कर लें। और सुलह करना (हर हाल में) बेहतर है। और मानव (स्वभाव में) कंजूसी रख दी गई है और यदि तुम उपकार करो और तक़्वा से काम लो तो निस्सन्देह अल्लाह जो तुम करते हो उससे भली-भाँति परिचित है।"

यदि आपसी परामर्श के माध्यम से भी दोनों के बीच सुलह करना कठिन हो जाए तो दोनों पक्षों से एक एक सुलह पसंद आदमी जिसको फैसले का अधिकार हो, की सहायता लेनी चाहिए। जैसा कि अल्लाह तआला फ़रमाता है-

وَاِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوْا حَكَمًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَهْلِهَا ۚ اِنْ يُّرِيْدَآ اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ بَيْنَهُمَا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا خَبِيْرًا ﴿٣٦﴾ (अन्निसा- 4/36)

"और यदि तुम्हें उन दो (पति-पत्नी) के बीच अत्यधिक मतभेद का भय हो तो उस (अर्थात् पति) के घर वालों में से एक विवेकशील

फ़ैसला करने वाला व्यक्ति और उस (अर्थात् पत्नी) के घर वालों में से एक विवेकशील फैसला करने वाला व्यक्ति निश्चित करो। यदि वे दोनों (अपना) सुधार चाहें तो अल्लाह उन दोनों के बीच सहमति उत्पन्न कर देगा। निस्सन्देह अल्लाह स्थायी ज्ञान रखने वाला (और) ख़ूब ख़बर रखने वाला है।"

तलाक़ (विवाह विच्छेद)

जब सुलह-सफाई के सभी प्रयास विफ़ल हो जाएं तो विवाह संबंध को तोड़ देना ही एक मात्र साधन है जिसके द्वारा शांति बहाल की जा सकती है। हालांकि यह भी याद रखना चाहिए कि इस्लाम तलाक़ को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं कि ख़ुदा के निकट जायज़ चीज़ों में सबसे अप्रिय चीज़ तलाक़ है।

तलाक़ में पहल करना पति या पत्नी दोनों तरफ़ से किया जा सकता है। पत्नि की तरफ़ से तलाक़ (ख़ुलअ) की स्थिति में मामले को क़ानून द्वारा (न्यायिक रूप से) आगे बढ़ा दिया जाएगा ताकि पत्नि के अधिकारों की पूर्ण रूप से सुरक्षा की जा सके।

पति-पत्नी के बीच मतभेद उत्पन्न होने की स्थिति में जब सुलह के प्रयास विफ़ल हो जाएं तथा पति अपनी पत्नी से अलग होने की क़सम खा ले (निश्चय कर ले) तो उसे चार महीने के भीतर वापस लौटना होगा।

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآ إِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ ۚ فَاِنْ فَآءُوْ فَاِنَّ
اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٢٧﴾ وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ

(अलबक़रह : 2/227-228)

अर्थात "जो लोग अपनी पत्नियों से सम्बन्ध स्थापित न करने की क़सम खाते हैं, उनके लिए चार महीने तक प्रतीक्षा करना (उचित) होगा। अतः यदि वे (सुलह की ओर) लौट आएँ तो अल्लाह निःसन्देह बहुत क्षमा करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है। और यदि वे तलाक़ का पक्का निर्णय कर लें तो निश्चित रूप से अल्लाह बहुत सुनने वाला (और) स्थायी ज्ञान रखने वाला है।"

तलाक़ के संबंध में पूर्ण नियम मौजूद हैं। यह इसलिए बनाए गए हैं ताकि तलाक़ को मामूली न समझा जाए और न ही इसे आवेश या आक्रोश की स्थिति (हालत) में दिया जाए। तलाक़ एक सोच-समझकर किया जाने वाला निर्णय होना चाहिए जिसका फ़ैसला दोनों पक्ष अपने और अपने बच्चों (यदि बच्चे हों तो) के बारे में पूर्ण विचार-विमर्श करने के बाद करें। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस प्रक्रिया को कुछ हद तक लंबा किया गया है ताकि तलाक़-ए-बत्ता अपरिवर्तनीय (वापस न लौट पाना) होने से पहले दोनों पक्षों को विचार-विमर्श करने और सुलह करने का अवसर प्राप्त हो सके।

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۪ فَاِمۡسَاكٌۢ بِمَعۡرُوۡفٍ اَوۡ تَسۡرِيۡحٌۢ بِاِحۡسَانٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَكُمۡ اَنۡ تَاۡخُذُوۡا مِمَّاۤ اٰتَيۡتُمُوۡهُنَّ شَيۡـًٔا اِلَّاۤ اَنۡ يَّخَافَاۤ اَلَّا يُقِيۡمَا حُدُوۡدَ اللّٰهِ ؕ فَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا يُقِيۡمَا حُدُوۡدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡهِمَا فِيۡمَا افۡتَدَتۡ بِهٖ ؕ تِلۡكَ حُدُوۡدُ اللّٰهِ فَلَا تَعۡتَدُوۡهَا ۚ وَمَنۡ يَّتَعَدَّ حُدُوۡدَ اللّٰهِ فَاُولٰٓـئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوۡنَ ﴿۲۳۰﴾ (अलबक़रह : 2/230)

"तलाक़ दो बार है (जिस में इद्दत अर्थात तीन महीने की निश्चित् समय सीमा के अन्दर एक दूसरे की ओर लौट सकें) अतः

(इसके बाद स्त्री को) या तो समुचित ढंग से रोक रखना होगा अथवा उपकार पूर्वक विदा करना होगा। और जो तुम उन्हें दे चुके हो उसमें से कुछ भी वापस लेना तुम्हारे लिए उचित नहीं। सिवाय इसके कि वे दोनों डरें कि वे अल्लाह की (निर्धारित) सीमाओं का पालन नहीं कर सकेंगे। और यदि यह डर हो कि वे दोनों अल्लाह की निर्धारित सीमाओं का पालन नहीं कर सकेंगे तो वह स्त्री (झगड़ा निपटाने के उद्देश्य से जो धन पुरुष के पक्ष में) छोड़ दे उसके बारे में उन दोनों पर कोई पाप नहीं। यह अल्लाह की निर्धारित सीमाएँ हैं, अतः उनका उल्लंघन न करो और जो कोई अल्लाह की सीमाओं का उल्लंघन करे तो वस्तुतः वही लोग अत्याचारी हैं।"

जल्दबाज़ी में तलाक़ देने को रोकने के लिए एक अन्य निर्देश यह है कि -

فَإِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهُ مِنْ بَعْدُ حَتَّىٰ تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهُ ۗ فَإِنْ طَلَّقَهَا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا أَنْ يَتَرَاجَعَا إِنْ ظَنَّا أَنْ يُقِيمَا حُدُودَ اللَّهِ ۗ وَتِلْكَ حُدُودُ اللَّهِ يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَعْلَمُونَ ﴿٢٣١﴾

(अलबक़रह- 2/231)

"फिर यदि वह (पुरुष) उसे तलाक़ दे दे तो फिर इसके बाद उसके लिए पुनः उस पुरुष के निकाह में आना जाइज़ नहीं होगा जब तक कि वह उसके सिवा किसी अन्य पुरुष से विवाह न कर ले। फिर यदि वह (भी) उसे तलाक़ दे दे तो फिर उन दोनों का एक दूसरे की ओर लौटने में कोई पाप नहीं, यदि वह यह धारणा रखते हों कि (इस बार) वह अल्लाह की (निर्धारित) सीमाओं का पालन कर सकेंगे। और यह अल्लाह की निर्धारित सीमाएँ हैं जिन्हें वह उन लोगों के लिए स्पष्ट

रूप से वर्णन कर रहा है, जो ज्ञान रखते हैं।"

وَاِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَاَمْسِكُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ سَرِّحُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ ۪ وَلَا تُمْسِكُوْهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوْا ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ ؕ وَلَا تَتَّخِذُوْٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ۫ وَّاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ وَالْحِكْمَةِ يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ﴿٢٣٢﴾ (अल-बक़रह- 2/232)

"और जब तुम स्त्रियों को तलाक़ दो और वे अपनी निश्चित अवधि को पूरी कर लें (तो चाहो) तो तुम उन्हें विधिपूर्वक रोक लो अथवा (चाहो तो) समुचित ढंग से विदा करो। और तुम उन्हें कष्ट पहुँचाने के उद्‌देश्य से न रोको ताकि तुम उन पर अत्याचार कर सको। और जो भी ऐसा करे तो निश्चित रूप से उसने अपनी ही जान पर अत्याचार किया। और अल्लाह की आयतों को उपहास का पात्र न बनाओ और अल्लाह की उस नेमत को याद करो जो तुम पर है और जो उसने तुम पर पुस्तक और तत्त्वज्ञान में से उतारा, वह उसके द्वारा तुम्हें उपदेश देता है। और अल्लाह का तक़्वा धारण करो और जान लो कि अल्लाह हर चीज़ को ख़ूब अच्छा तरह जानता है।"

وَاِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ اَنْ يَّنْكِحْنَ اَزْوَاجَهُنَّ اِذَا تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ ذٰلِكَ يُوْعَظُ بِهٖ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ ذٰلِكُمْ اَزْكٰى لَكُمْ وَاَطْهَرُ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢٣٣﴾ (अलबक़रह- 2/233)

"और जब तुम स्त्रियों को तलाक़ दो और वे अपनी अवधि पूरी

कर लें तो उन्हें अपने (भावी) पतियों से विवाह करने से न रोको, जब वे ससुचित ढंग से परस्पर इस बात पर सहमत हो जाएं। यह उपदेश उसे किया जा रहा है जो तुम में से अल्लाह और परलोक पर ईमान लाता है। ये तुम्हें अधिक नेक और अधिक पवित्र बनाने वाला उपाय है और अल्लाह जानता है जबकि तुम नहीं जानते।"

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ
يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ اِنْ كُنَّ يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ
الْاٰخِرِ ؕ وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا

(अल् बक़रह- 2/229)

"और तलाक़ शुदा स्त्रियों को तीन मासिक धर्म की अवधि तक स्वयं को रोके रखना होगा। यदि वे अल्लाह और परलोक पर ईमान लाती हैं तो अल्लाह ने जो कुछ उनके गर्भाशयों में पैदा कर दिया है, उस को छिपाना उनके लिए उचित नहीं और इस परिस्थिति में यदि उनके पति सुधार चाहते हैं तो वे उन्हें वापस लेने के ज़्यादा हक़दार हैं।"

तलाक़ रजअी (जिसमें पति अपनी पत्नी को वापस ले सकता है) की घोषणा के पश्चात् यदि पति-पत्नी परस्पर सहवास करते हैं तो तलाक़ का ऐलान पूरी तरह से निरस्त हो जाता है।

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا يَّتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ
اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا ۚ فَاِذَا بَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ
فِيْمَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ

(अल-बक़रह- 2/235)

"और तुम में से जो मर जाएं और पीछे पत्नियाँ छोड़ जाएँ तो वे (विधवाएँ) अपने आप को चार महीने और दस दिन तक रोके रखें। अतः जब वे अपनी (निश्चित) अवधि को पहुँच जाएं तो फिर वे (स्त्रियाँ) अपने बारे में समुचित ढंग से जो भी फैसला करें, उस बारे में तुम पर कोई पाप नहीं और जो तुम करते हो अल्लाह उससे सदैव अवगत रहता है।

وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا عَرَّضْتُمْ بِهٖ مِنْ خِطْبَةِ النِّسَآءِ اَوْ اَكْنَنْتُمْ فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ؕ عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ وَلٰكِنْ لَّا تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ؕ۬ وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ حَتّٰى يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ؕ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿۲۳۶﴾

(अल-बक़रह- 2/236)

"और इस बारे में तुम पर कोई पाप नहीं कि तुम (उन) स्त्रियों से विवाह के प्रस्ताव सम्बन्धी कोई इशारा करो या (उसे) अपने दिलों में छिपाए रखो। अल्लाह जानता है कि तुम्हें अवश्य उनका खयाल आएगा। परन्तु तुम कोई अच्छी बात कहने के सिवा उनसे गुप्त वादे न करना। और जब तक निर्धारित इद्दत अपनी अवधि को न पहुँच जाए, निकाह करने का संकल्प न करो और जान लो कि जो कुछ तुम्हारे दिलों में है, अल्लाह उसकी जानकारी रखता है। अतः उस (की पकड़) से बचो और जान लो कि अल्लाह बहुत क्षमा करने वाला (और) सहनशील है।"

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا ۖ وَّصِيَّةً لِّاَزْوَاجِهِمْ مَّتَاعًا اِلَى الْحَوْلِ غَيْرَ اِخْرَاجٍ ۚ فَاِنْ خَرَجْنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْ مَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ مِنْ مَّعْرُوْفٍ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٤١﴾

(अल-बक़रह- 2/241)

अर्थात"और तुम में से जो लोग मर जाएं और अपने पीछे पत्नियाँ छोड़ रहे हों, उनकी पत्नियों के हक़ में यह वसीयत है कि वे (अपने घरों में) एक वर्ष तक लाभ उठायें और (उन्हें) न निकाला जाए। हाँ, यदि वे स्वयं निकल जाएं तो जो वे अपने सम्बन्ध में स्वयं कोई फैसला करें तो तुम पर कोई पाप नहीं और अल्लाह पूर्ण प्रभुत्व वाला (और) परम विवेकशील है।"

وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۗ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ﴿٢٤٢﴾

(अल-बक़रह- 2/242)

"और तलाक़शुदा स्त्रियों को भी विधिपूर्वक कुछ लाभ पहुँचाना है। (यह) मुत्तक़ियों पर अनिवार्य है।"

لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَا لَمْ تَمَسُّوْهُنَّ اَوْ تَفْرِضُوْا لَهُنَّ فَرِيْضَةً ۖ وَّمَتِّعُوْهُنَّ ۚ عَلَى الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ ۚ مَتَاعًا بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى الْمُحْسِنِيْنَ (अलबक़रह- 2/237)

अर्थात"तुम पर कोई पाप नहीं कि यदि तुम स्त्रियों को तलाक़ दे दो जबकि तुमने अभी उन्हें स्पर्श न किया हो या अभी तुमने उनके लिए हक़ मेहर निर्धारित न किया हो। और उन्हें कुछ लाभ भी पहुँचाओ संपन्न व्यक्ति पर उसके सामर्थ्य के अनुसार और निर्धन व्यक्ति पर उसके सामर्थ्य के अनुसार अनिवार्य है। (यह) विधिसंगत

कुछ शिष्टाचार है। उपकार करने वालों पर तो (यह) अनिवार्य है।"

وَاِنْ طَلَّقْتُمُوْهُنَّ مِنْ قَبْلِ اَنْ تَمَسُّوْهُنَّ وَقَدْ فَرَضْتُمْ لَهُنَّ
فَرِيْضَةً فَنِصْفُ مَا فَرَضْتُمْ اِلَّآ اَنْ يَّعْفُوْنَ اَوْ يَعْفُوَا الَّذِىْ بِيَدِهٖ
عُقْدَةُ النِّكَاحِ ؕ وَاَنْ تَعْفُوْٓا اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ؕ وَلَا تَنْسَوُا الْفَضْلَ
بَيْنَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٣٨﴾ (अलबक़रह- 2/238)

अर्थात "और यदि तुम उन्हें स्पर्श करने से पूर्व तलाक़ दे दो जबकि तुम उनका हक़ मेहर निर्धारित कर चुके हो, तो फिर जो तुमने निर्धारित किया है, उसका आधा (देना) होगा सिवाय इसके कि वे (स्त्रियाँ) क्षमा कर दें अथवा वह व्यक्ति क्षमा कर दे जिसके हाथ में निकाह का बंधन है। और तुम्हारा क्षमा कर देना तक़वा के अधिक निकट है और परस्पर उपकार (पूर्ण व्यवहार) को भूल न जाया करो। जो तुम करते हो, निःसन्देह अल्लाह उस पर गहन दृष्टि रखने वाला है।"

وَالْوَالِدٰتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ لِمَنْ اَرَادَ اَنْ يُّتِمَّ
الرَّضَاعَةَ ؕ وَعَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ
لَا تُكَلَّفُ نَفْسٌ اِلَّا وُسْعَهَا ۚ لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌۢ بِوَلَدِهَا وَلَا مَوْلُوْدٌ
لَّهٗ بِوَلَدِهٖ ۗ وَعَلَى الْوَارِثِ مِثْلُ ذٰلِكَ ۚ فَاِنْ اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ
مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا ؕ وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ تَسْتَرْضِعُوْٓا
اَوْلَادَكُمْ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِذَا سَلَّمْتُمْ مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ
وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٣٣﴾

(अलबक़रह- 2/234)

अर्थात "और माताएँ अपने बच्चों को पूरे दो साल दूध पिलायें, उस (पुरुष) के लिए जो दुग्धपान (की अवधि) को पूरा करना चाहता

है। और जिस (पुरुष) का बच्चा है, उसके ज़िम्मे ऐसी स्त्रियों के खाने-पीने और वस्त्रों (की व्यवस्था) समुचित ढंग से करना है। किसी जान पर उसकी शक्ति से बढ़कर बोझ नहीं डाला जाता। माँ को उसके बच्चे के सम्बन्ध में कष्ट न दिया जाए और न ही बाप को उसके बच्चे के सम्बन्ध में। और उत्तराधिकारी पर भी ऐसा ही आदेश लागू होगा। अतः यदि वे दोनों परस्पर सहमति और विचार-विमर्श से दूध छुड़ाने का निर्णय कर लें तो उन दोनों पर कोई पाप नहीं और यदि तुम अपनी संतान को (किसी और से) दूध पिलवाना चाहो तो तुम पर कोई पाप नहीं, बशर्ते कि तुम ने समुचित ढंग से जो कुछ (उन्हें) देना था, (उनके) सुपुर्द कर चुके हो। और अल्लाह का तक़्वा धारण करो और जान लो कि जो तुम करते हो अल्लाह उस पर गहन दृष्टि रखने वाला है।

निम्नलिखित आयतों में इन सभी विषयों को संक्षेप में वर्णन किया गया है-

يَاأَيُّهَا النَّبِيُّ إِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَاءَ فَطَلِّقُوهُنَّ لِعِدَّتِهِنَّ وَأَحْصُوا الْعِدَّةَ ۖ وَاتَّقُوا اللَّهَ رَبَّكُمْ ۖ لَا تُخْرِجُوهُنَّ مِنْ بُيُوتِهِنَّ وَلَا يَخْرُجْنَ إِلَّا أَنْ يَأْتِينَ بِفَاحِشَةٍ مُبَيِّنَةٍ ۚ وَتِلْكَ حُدُودُ اللَّهِ ۚ وَمَنْ يَتَعَدَّ حُدُودَ اللَّهِ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهُ ۚ لَا تَدْرِي لَعَلَّ اللَّهَ يُحْدِثُ بَعْدَ ذَٰلِكَ أَمْرًا ﴿٢﴾ (अल-तलाक़- 65/2)

अर्थात "हे नबी जब तुम अपनी पत्नियों को तलाक़ दिया करो तो उनको निर्धारित समय (इद्दत) के अनुसार तलाक़ दो और (तलाक़ के बाद) इद्दत के दिनों की गिनती रखो और अल्लाह (अर्थात्) अपने

रब्ब से डरो। उन्हें उनके घरों से न निकालो और न वे स्वयं निकलें सिवाए इसके कि वे खुली-खुली अश्लीलता में पड़ जाएँ। और यह अल्लाह की सीमाएँ हैं। और जो भी अल्लाह की सीमाओं का उल्लंघन करे तो नि:सन्देह उसने अपनी जान पर अत्याचार किया। तू नहीं जानता कि संभवत: इसके बाद अल्लाह कुछ और प्रकट कर दे।"

فَإِذَا بَلَغْنَ أَجَلَهُنَّ فَأَمْسِكُوهُنَّ بِمَعْرُوفٍ أَوْ فَارِقُوهُنَّ بِمَعْرُوفٍ وَأَشْهِدُوا ذَوَيْ عَدْلٍ مِّنكُمْ وَأَقِيمُوا الشَّهَادَةَ لِلَّهِ ۚ ذَٰلِكُمْ يُوعَظُ بِهِ مَن كَانَ يُؤْمِنُ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ ۚ وَمَن يَتَّقِ اللَّهَ يَجْعَل لَّهُ مَخْرَجًا ﴿٣﴾ (अत्-तलाक़- 65/3)

"अत: जब वे (इद्दत की) अपनी निर्धारित अवधि को पहुँच जाएँ तो उन्हें समुचित ढंग से रोक लो या उन्हें समुचित ढंग से अलग कर दो। और अपने में से दो न्याय-परायण (व्यक्तियों) को गवाह ठहरा लो और अल्लाह के लिए सच्ची गवाही दो। तुम में से जो कोई अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान लाता है उस व्यक्ति को यह उपदेश दिया जाता है और जो अल्लाह से डरे उसके लिए वह मुक्ति का कोई न कोई मार्ग बना देता है।"

وَاللَّائِي يَئِسْنَ مِنَ الْمَحِيضِ مِن نِّسَائِكُمْ إِنِ ارْتَبْتُمْ فَعِدَّتُهُنَّ ثَلَاثَةُ أَشْهُرٍ وَاللَّائِي لَمْ يَحِضْنَ ۚ وَأُولَاتُ الْأَحْمَالِ أَجَلُهُنَّ أَن يَضَعْنَ حَمْلَهُنَّ ۚ وَمَن يَتَّقِ اللَّهَ يَجْعَل لَّهُ مِنْ أَمْرِهِ يُسْرًا ﴿٥﴾

(अत्-तलाक़- 65/5)

"और तुम्हारी स्त्रियों में से जो मासिक धर्म से निराश हो चुकी हों (अर्थात् उनकी माहवारी बन्द हो चुकी है) यदि तुम्हें शंका हो तो

उनकी इद्दत तीन महीने है और इसी तरह उन्हें भी जिन्हें मासिक-धर्म नहीं हो रहा। (और उनकी भी जो रजवती नहीं हुईं।) और जहाँ तक गर्भवती स्त्रियों का संबंध है उनकी इद्दत बच्चे का जन्म होने तक है। और जो अल्लाह का तक़वा धारण करे अल्लाह अपने हुकुम से उसके लिए आसानी पैदा कर देगा।"

اَسۡكِنُوۡهُنَّ مِنۡ حَيۡثُ سَكَنۡتُمۡ مِّنۡ وُّجۡدِكُمۡ وَلَا تُضَآرُّوۡهُنَّ لِتُضَيِّقُوۡا عَلَيۡهِنَّ ؕ وَاِنۡ كُنَّ اُولَاتِ حَمۡلٍ فَاَنۡفِقُوۡا عَلَيۡهِنَّ حَتّٰى يَضَعۡنَ حَمۡلَهُنَّ ۚ فَاِنۡ اَرۡضَعۡنَ لَكُمۡ فَاٰتُوۡهُنَّ اُجُوۡرَهُنَّ ۚ وَاۡتَمِرُوۡا بَيۡنَكُمۡ بِمَعۡرُوۡفٍ ۚ وَاِنۡ تَعَاسَرۡتُمۡ فَسَتُرۡضِعُ لَهٗۤ اُخۡرٰى ؕ ﴿٧﴾ لِيُنۡفِقۡ ذُوۡ سَعَةٍ مِّنۡ سَعَتِهٖ ؕ وَمَنۡ قُدِرَ عَلَيۡهِ رِزۡقُهٗ فَلۡيُنۡفِقۡ مِمَّاۤ اٰتٰىهُ اللّٰهُ ؕ لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفۡسًا اِلَّا مَاۤ اٰتٰٮهَا ؕ سَيَجۡعَلُ اللّٰهُ بَعۡدَ عُسۡرٍ يُّسۡرًا ﴿٨﴾

(अत्तलाक़- 65/7-8)

"(हे मुसलमानो! तलाकशुदा औरतों के अधिकारों को न भूल जाओ) उनको (वहीं) रखो जहाँ तुम (स्वयं) अपने सामर्थ्य के अनुसार रहते हो। और उन्हें कष्ट न पहुँचाओ ताकि उन के लिए ज़िन्दगी जीना कठिन कर दो। और यदि वे गर्भवती हों तो उन पर खर्च करते रहो जब तक कि वे अपने प्रसव से मुक्त न हो जाएँ। फिर यदि वे तुम्हारे लिए (तुम्हारी संतान को) दूध पिलाएँ तो उनका पारिश्रमिक उन्हें दो। और अपने बीच न्यायोचित ढंग से सहमति का वातावरण पैदा करो। और यदि तुम (समझौता करने में) एक दूसरे से परेशानी महसूस करो तो उस (शिशु को पिता) की ओर से कोई अन्य (दूध पिलाने वाली) दूध पिलाए। चाहिए कि धनवान अपने सामर्थ्य के अनुसार खर्च करे

और जिस की जीविका कम कर दी गई हो तो जो भी अल्लाह ने उसे दिया है वह उसमें से खर्च करे। अल्लाह कदापि किसी जान को उससे बढ़कर जो उसने उसे दिया हो कष्ट नहीं देता। अल्लाह हर तंगी के बाद एक आसानी अवश्य पैदा कर देता है।"

बहुविवाह

किसी भी धर्म में ईश्वरीय आदेश द्वारा पत्नियों की संख्या को विशेष रूप से प्रतिबंधित नहीं किया गया है, और न ही इस्लाम के सिवा किसी धर्म में उनकी संख्या को सीमित किया गया है। इस्लाम बहुविवाह की अनुमति तो देता है, परन्तु इसकी संख्या चार तक सीमित की गई है। और यह अनुमति भी उन (अर्थात पत्नियों) से न्यायपूर्ण व्यवहार की शर्त के साथ दी गई है।

فَإِنْ خِفْتُمْ أَلَّا تَعْدِلُوا فَوَاحِدَةً (अन्निसा- 4/4)

अर्थात "यदि तुम्हें भय हो कि तुम न्याय नहीं कर सकोगे तो फिर केवल एक (पर्याप्त है)।"

एक से अधिक पत्नियाँ रखने की स्थिति में स्त्री के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करने का अर्थ यह है कि उनके भरण-पोषण और उनके साथ समय बिताने के मामलों में उनके बीच समानता बनाए रखना है। दूसरे शब्दों में ऐसे मामलों में जिनमें समान बंटवारा हो सकता है उन मामलों में ऐसा विभाजन अनिवार्य है। और जिन मामलों में व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं उसमें समानता निर्धारित नहीं की गई है। जैसे दिली लगाव और इश्क़ तथा मुहब्बत इत्यादि। यह सामान्य नियम से बाहर है।

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا (अल-बक़रा- 2/287)

अर्थात "अल्लाह किसी व्यक्ति पर सिवाए उस (ज़िम्मेदारी) के जितनी उसकी क्षमता (शक्ति) हो, उसकी शक्ति से बढ़कर कोई बोझ नहीं डालता।"

तथा इसकी एक विशिष्ट व्याख्या यह भी है-

وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْٓا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَآءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ ۭ وَاِنْ تُصْلِحُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝١٣٠ (अन्निसा- 4/130)

अर्थात् "और तुम यह सामर्थ्य नहीं रख सकोगे कि स्त्रियों के बीच पूर्ण रूप से न्याय का मामला करो चाहे तुम कितना ही चाहो। इसलिए (कम से कम यह तो करो कि किसी एक की ओर) पूर्णतया न झुक जाओ कि उस (दूसरी) को मानो (अधर में) लटकता हुआ छोड़ दो और यदि तुम सुधार करो तथा तक़वा धारण करो तो निस्सन्देह अल्लाह बहुत क्षमा करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है।"

कुछ आधुनिक मुस्लिम लेखकों ने पश्चिमी देशों का पक्ष लेने के जोश व उत्सुकता में यह तर्क देने की कोशिश की है कि क्योंकि पत्नियों के साथ समान व्यवहार करने की शर्त पर बहुविवाह की अनुमति दी गई है (अन्निसा- 4) और क़ुर्आन मजीद में एक स्थान पर समानता का व्यवहार कर पाने को असंभव क़रार दिया गया है (अन्निसा- 130) अतः परिणामस्वरूप यह (बहुविवाह की) अनुमति निरस्त हो गई है। यह व्याख्या पूरी तरह से ग़लत और निराधार है।

सूरह निसा की एक सौ तीसवीं आयत का विषय स्पष्ट रूप से स्वयं पत्नियों की बहुलता को जारी रखना संभव मानता है। इसके अतिरिक्त सूरह निसा की इस आयत की व्याख्या में न तो आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने या आपके सहाबियों ने यह फ़रमाया है कि यह (बहुविवाह की) अनुमति इसी सूरत की चौथी आयत द्वारा निरस्त हो गई है। न ही किसी सदी में इस्लाम के विद्वानों ने ऐसी व्याख्या की सराहना की है। सच तो यह है कि इस्लामी परिभाषा के अनुसार बहुविवाह एक ऐसा सिद्धान्त है जो उच्च नैतिक मूल्यों के विकास और पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों की पवित्रता की रक्षा के लिए बहुत हिकमत से बनाया गया है। इसे एक लाभकारी नैतिक और सांस्कृतिक सुरक्षा वाल्व (safety valve) के रूप में वर्णित किया जा सकता है। ऐसे सुरक्षा वाल्व के अभाव का परिणाम है कि एक विवाह की कठोर प्रणाली को लागू करने वाले समाज संकीर्णता, समलैंगिकता और हैवानियत से चूर-चूर हो रहे हैं। वह बेलगाम कामुकता को सामान्य बात मानकर नैतिकता से दूर हो गए हैं।

नैतिकता की रेखा को एक-विवाह और बहुविवाह के बीच नहीं बल्कि प्रतिबद्ध करने और खुली छूट देने के बीच खींची जानी चाहिए। नैतिक पाबंदी या प्रतिबद्धता के अभाव में एक विवाह तथा बहुविवाह दोनों का दुरुपयोग किया जा सकता है। वास्तव में यह संबंधों की स्थिति पर आधारित है जो उसे बनाता है या बिगाड़ता है। जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि इस्लाम में विवाह का मुख्य उद्देश्य ख़ुदा की प्रसन्नता प्राप्त करना है। अतः इस्लाम बुद्धिमानीपूर्ण विनियमन और अभ्यास के द्वारा सभी शक्तियों और क्षमताओं का

लाभकारी विकास करता है और उनके दमन तथा उपहासपूर्ण बनाने की निंदा करता है।

इस्लाम के प्रारंभ में इस्लाम को स्वीकार करना मानो प्राण देने के समान था। मक्का में बहुत से लोगों ने प्राणों के बलिदान दिए। और बहुत लोगों को मदीना में और अन्य स्थानों पर युद्ध के मैदानों में प्राण त्यागने पड़े। यद्यपि महिलाएं इस से अछूती नहीं थीं परन्तु पुरुषों की तुलना में महिलाओं को बहुत ही कम इस सर्वोच्च बलिदान के लिए बुलाया गया था जिसके परिणामस्वरूप पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई। विधवाओं, अनाथ लड़के और लड़कियों को आजीविका देनी थी। ऐसी परिस्थितियों में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा के हेतु बहुविवाह अनिवार्य हो जाता है और एक बलिदान बन जाता है न कि स्वार्थ। इसके अलावा व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी बहुविवाह अनिवार्य था। आधुनिक समय में परिस्थितियाँ बदल गई हैं। यद्यपि अफ्रीका के बाहर एकपत्नीत्व का चलन बढ़ता जा रहा है लेकिन व्यक्तिगत मामलों में हर जगह नैतिक मूल्य एक से अधिक पत्नियों की मांग करते हैं। इस्लाम ऐसे विषयों को व्यवस्थित करता है।

मुसलमानों में बहुविवाह आपत्तिजनक विषय नहीं है। एक विवाह के समान ही सम्माननीय है। पत्नियों तथा बच्चों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता।

माँ

इस्लाम ने माँ को बहुत सम्माननीय स्थान दिया है। माता-पिता विशेष रूप से माताएं जिस प्रकार मुहब्बत, इख़्लास, नर्मी की हक़दार हैं इस विषय पर क़ुर्आन मजीद में बार-बार ज़ोर दिया गया है।

وَوَصَّيْنَا الْإِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ حُسْنًا (अल्-अन्कबूत - 29/9)

अर्थात "और हमने मनुष्य को अपने माता-पिता से सद्-व्यवहार करने का आदेश दिया है।"

قُلْ تَعَالَوْا اَتْلُ مَا حَرَّمَ رَبُّكُمْ عَلَيْكُمْ اَلَّا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْئًا
وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا (अल्-अन्आम- 6/152)

अर्थात "तू उनसे कह दे, आओ मैं पढ़कर सुनाऊँ जो तुम्हारे रब्ब ने तुम पर हराम कर दिया है (अर्थात्) यह कि तुम किसी चीज़ को उस (ख़ुदा) का साझीदार न ठहराओ और (आवश्यक ठहरा दिया है कि) माता-पिता के साथ भलाई का बर्ताव करो।"

وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْئًا وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا
(अन्निसा- 4/37)

अर्थात "और अल्लाह की उपासना करो और किसी चीज़ को उसका साझीदार न ठहराओ और माता-पिता के साथ भलाई करो।"

وَقَضٰى رَبُّكَ اَلَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّآ اِيَّاهُ وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۭ اِمَّا يَبْلُغَنَّ
عِنْدَكَ الْكِبَرَ اَحَدُهُمَآ اَوْ كِلٰهُمَا فَلَا تَقُلْ لَّهُمَآ اُفٍّ وَّلَا تَنْهَرْهُمَا
وَقُلْ لَّهُمَا قَوْلًا كَرِيْمًا ﴿۲۴﴾ وَاخْفِضْ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَةِ
وَقُلْ رَّبِّ ارْحَمْهُمَا كَمَا رَبَّيٰنِيْ صَغِيْرًا (बनी इस्राईल- 17/24-25)

अर्थात "और तेरे रब्ब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम उसके सिवा किसी की उपासना न करो और माता-पिता से एहसान का बर्ताव करो। यदि तेरे सामने उन दोनों में से कोई एक या वे दोनों ही वृद्धावस्था की आयु को पहुँचें तो उन्हें उफ़ तक न कह और उन्हें झिड़क नहीं और उन्हें विनम्रता और सम्मान के साथ सम्बोधित कर। और उन दोनों के लिए दया भाव से विनम्रता के पर झुका दे। और (उनके लिए दुआ करते हुए) कह कि हे मेरे रब्ब इन दोनों पर दया कर, जिस प्रकार इन दोनों ने बचपन में मेरा पालन-पोषण किया।"

وَوَصَّيْنَا الْإِنسَانَ بِوَالِدَيْهِ حَمَلَتْهُ أُمُّهُ وَهْنًا عَلَىٰ وَهْنٍ وَفِصَالُهُ فِي عَامَيْنِ أَنِ اشْكُرْ لِي وَلِوَالِدَيْكَ إِلَيَّ الْمَصِيرُ ﴿١٥﴾

(अल-लुक़मान- 31/15)

अर्थात "और हमने मनुष्य को उसके माता-पिता के हक़ में पक्की नसीहत की थी उसकी माँ ने उसे कमज़ोरी पर कमज़ोरी (की अवस्था) में उठाए रखा। और उसका दूध छुड़ाना दो वर्षों में (पूर्ण) हुआ। (उसे हमने पक्की नसीहत की) कि मेरी कृतज्ञता प्रकट कर (अर्थात् धन्यवाद कर) और अपने माता-पिता की भी। मेरी ओर ही (तुम्हें) लौट कर आना है।"

وَوَصَّيْنَا الْإِنسَانَ بِوَالِدَيْهِ إِحْسَانًا حَمَلَتْهُ أُمُّهُ كُرْهًا وَوَضَعَتْهُ كُرْهًا وَحَمْلُهُ وَفِصَالُهُ ثَلَاثُونَ شَهْرًا حَتَّىٰ إِذَا بَلَغَ أَشُدَّهُ وَبَلَغَ أَرْبَعِينَ سَنَةً قَالَ رَبِّ أَوْزِعْنِي أَنْ أَشْكُرَ نِعْمَتَكَ الَّتِي أَنْعَمْتَ عَلَيَّ وَعَلَىٰ وَالِدَيَّ وَأَنْ أَعْمَلَ صَالِحًا تَرْضَاهُ وَأَصْلِحْ لِي فِي ذُرِّيَّتِي إِنِّي تُبْتُ إِلَيْكَ وَإِنِّي مِنَ الْمُسْلِمِينَ (अल-अहक़ाफ़- 46/16)

अर्थात "और हमने मनुष्य को ताकीद के साथ आदेश दिया कि अपने माता-पिता से सद-व्यवहार करे। क्योंकि उसे उसकी माँ ने कष्ट के साथ (गर्भ में) उठाए रखा और कष्ट ही के साथ उसे जन्म दिया। और उसके गर्भ-धारण और दूध छुड़ाने का समय तीस महीना है। यहाँ तक कि जब वह अपनी परिपक्व आयु को पहुँचा और चालीस वर्ष का हो गया तो उसने कहा, हे मेरे रब्ब मुझे सामर्थ्य प्रदान कर कि मैं तेरी इस नेमत पर कृतज्ञता प्रकट कर सकूँ जो तूने मुझ पर और मेरे माता-पिता पर की। और ऐसे नेक कर्म करूँ जिन से तू प्रसन्न हो। और मेरे लिए मेरी संतान का भी सुधार कर दे। निश्चित रूप से मैं तेरी ही ओर लौटता हूँ और निःसन्देह मैं तेरे आज्ञाकारी बन्दों में से हूँ।"

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया- तुम में से बेहतर वह है जो अपने परिवार के साथ अच्छा व्यवहार करता है। जन्नत आपकी माताओं के चरणों में है। और फ़रमाया जो व्यक्ति अपनी बेटियों का पालन-पोषण अच्छे से करेगा और अपने बेटों की तुलना में उनसे कोई भेदभाव नहीं करता वह जन्नत में मेरे साथ होगा।

आर्थिक दृष्टि से महिलाओं की स्थिति

दुनिया के सभी धर्मों में इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जिसने सबसे पहले महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता दी है। यह किसी से छिपा नहीं है कि 1882 ई. में ब्रिटिश पार्लियामेंट में संसद द्वारा पहला विवाहित महिला संपत्ति अधिनियम पारित किए जाने तक एक विवाहित महिला अपने पति से स्वतंत्र रूप में अपनी कोई संपत्ति

नहीं रख सकती थी। विवाह के पश्चात् किसी भी कुंवारी लड़की की संपत्ति स्वत: ही उसके पति के पास चली जाती थी। सौ साल बाद भी ब्रिटिश कानून के कुछ पहलू ऐसे हैं जिनमें एक महिला को अपने पति पर निर्भर रहना पड़ता है।

इस्लाम ने प्रारंभ से ही महिला की स्वतंत्र आर्थिक स्थिति स्थापित की है। इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि विवाह के समय पति का दायित्व है कि वह अपनी क्षमतानुसार पत्नी को आर्थिक (वित्तीय) सहायता दे। इस राशि को मेहर कहा जाता है। यदि पति की मृत्यु के समय पत्नी का मेहर अभी भी अदा नहीं किया गया है, तो उसकी संपत्ति में से तुरंत चुकाए जाने वाले सभी ऋणों पर प्राथमिकता रखता है। इसके अलावा विधवा को पति की संपत्ति में से भी क़ानूनी रूप से हिस्सा लेने का अधिकार प्राप्त है। कोई भी संपत्ति जो एक महिला अपनी मेहनत से या उपहार के रूप में प्राप्त करती है तो वह केवल उसकी ही संपत्ति है जिस पर वह अपने पति से स्वतंत्र रूप से अपना अधिकार रख सकती है। हां, औरत अपने पति से उसकी देख रेख करने के लिए कह सकती है, परन्तु यदि वह इसे स्वयं संभालना या निगरानी करना चाहे तो पुरुष उस देख रेख में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। एक विवाहित महिला जिसके पास अपने स्वयं के संसाधन हैं वह घर चलाने में अपने संसाधनों का कुछ हिस्सा या पूरा हिस्सा ख़र्च कर सकती है, और अधिकांश मामलों में ऐसा होता भी है। लेकिन ऐसा करने के लिए वह पाबन्द नहीं है। घर चलाने की पूरी ज़िम्मेदारी पति की होती है भले ही पत्नी अपने पति से आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में क्यों न हो। निम्नलिखित घटना

से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

एक बार आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने महिलाओं को अपने संसाधनों में से दान देने की नसीहत की। अतः एक ही नाम की दो महिलाएं थीं जिनका नाम ज़ैनब था और उनमें से एक आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मशहूर सहाबी अब्दुल्लाह इब्न मसऊद की पत्नी थीं, वह आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आईं और उन्होंने कहा कि या रसूलुल्लाह हमारे पति के पास सीमित संसाधन हैं, जबकि हमारी वित्तीय स्थिति बहुत अच्छी है, तो क्या यह पुण्य का कार्य होगा अगर वह अपने संसाधनों द्वारा अपने पतियों की सहायता करें? आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि अपने पतियों पर ख़र्च करने से उन्हें दोगुना पुण्य प्राप्त होगा क्योंकि यह उपकार और रिश्तेदारों के प्रति उदारता इन दोनों रूपों में गिना जाएगा।

अल्लाह तआला फ़रमाता है-

وَلَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ ؕ لِلرِّجَالِ نَصِيْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبُوْا ؕ وَلِلنِّسَآءِ نَصِيْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ ؕ وَسْـَٔلُوا اللّٰهَ مِنْ فَضْلِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمًا ﴿۳۳﴾ (अन्निसा- 4/33)

अर्थात "और अल्लाह ने जो तुम में से कुछ को कुछ पर श्रेष्ठता प्रदान की है, उसका लालच न किया करो। पुरुषों के लिए उसमें से हिस्सा है जो वे अर्जित करें तथा स्त्रियों के लिए उसमें से हिस्सा है जो वे अर्जित करें और अल्लाह से उसकी कृपा माँगो। निस्सन्देह अल्लाह प्रत्येक विषय का ख़ूब ज्ञान रखता है।"

وَلِكُلٍّ جَعَلْنَا مَوَالِيَ مِمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ ؕ وَالَّذِيْنَ عَقَدَتْ اَيْمَانُكُمْ فَاٰتُوْهُمْ نَصِيْبَهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدًا ﴿٣٣﴾ (अन्निसा- 4/34)

"और हमने हर एक के लिए उस (धन) के उत्तराधिकारी बनाए हैं (वह उत्तराधिकारी) माता-पिता और निकट सम्बन्धी (हैं) और वे भी जिनसे तुमने पक्के वादे किए हैं (अर्थात् पत्नियां/पति) अतः उनको भी हिस्सा दो। निस्सन्देह अल्लाह हर बात पर निगरान है।"

उत्तराधिकार और विरासत की इस्लामी प्रणाली जिसका उद्देश्य संपत्ति का व्यापक वितरण है जिसे सूरह निसा की 12वीं, 13वीं और 177वीं आयतों में वर्णित किया गया है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवित माता-पिता, पत्नी या पति, बेटों या बेटियों को छोड़ कर मर जाता है तो वर सब विरासत में हिस्सा लेते हैं। इस विषय में सामान्य नियम यह है कि एक ही स्तर के रिश्ते में पुरुष को महिला से दोगुना हिस्सा मिलता है। लेकिन इसमें महिलाओं के साथ कोई भेदभाव नहीं किया गया क्योंकि घर का बोझ उठाने की ज़िम्मेदारी पुरुष पर है जबकि महिला पर ऐसी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। व्यवहारिक रूप से यह नियम महिलाओं के हक़ में अधिक अनुकूल (उपयोगी) सिद्ध होता है।

एक मुसलमान वसीयतनामे के निर्देशों के अनुसार अपनी संपत्ति का एक तिहाई (1/3) से ज़्यादा हिस्सा नहीं बेच सकता। विरासत, चाहे दान के लिए हो या गैर-उत्तराधिकारियों के पक्ष में, कुल संपत्ति के एक तिहाई से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए; न ही वसीयतनामे के निर्देशों के ज़रिया किसी उत्तराधिकारी के हिस्से को बढ़ाया या घटाया

जा सकता है। विरासत की इस्लामी व्यवस्था के तहत उत्तराधिकारियों के बीच भेदभाव की कोई गुंजाइश नहीं है, जैसे कि, उदाहरण के लिए, ज्येष्ठाधिकार, या महिलाओं को बाहर रखा जाना।

सामाजिक लेन-देन के संबंध में दी जाने वाली गवाही की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जो निर्देश दिए गए हैं कि उन्हें लिखित रूप में दर्ज किया जाए, इसको कभी-कभी ग़लती से इसे महिलाओं से भेदभाव के सबूत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वह निर्देश ये हैं -

وَاسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّامْرَاَتٰنِ مِمَّنْ تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰهُمَا فَتُذَكِّرَ اِحْدٰهُمَا الْاُخْرٰى (अल-बक़रह - 2/283)

अर्थात "और अपने पुरुषों में से दो को गवाह ठहरा लिया करो। और यदि दो पुरुष न मिल सकें तो एक पुरुष और दो स्त्रियाँ जिन्हें तुम चाहो, गवाह ठहरा लिया करो। (यह) इसलिए (है) कि उन दो स्त्रियों में से यदि एक भूल जाए तो दूसरी उसे याद करवा दे।"

यहां भेदभाव की तनिक भी आशंका नहीं है। सामान्य नियम यह है कि महिलाओं को न्यायिक कार्यवाही में गवाह के रूप में पेश होने से बचाना चाहिए। इसलिए आमतौर पर लेन-देन के दस्तावेज़ को प्रमाणित करने के लिए किसी महिला को नहीं बुलाना चाहिए। लेकिन आपातकालीन स्थिति में इस नियम में ढील दी जा सकती है, परन्तु उस समय एक और कठिनाई पैदा होगी। पुरुषों के गवाह बनने की स्थिति में सामाजिक रूप से क्योंकि उनका मिलना-जुलना होता रहता है। इसलिए लेन-देन के विषय में उनके द्वारा दी गई गवाही याद

रहती है और उस मामले की याद निरन्तर बनी रहती है। परन्तु एक पुरुष और एक औरत की गवाही से किसी मामले को दर्ज करने की स्थिति में आम तौर पर उस समय की इस्लामी सामाजिक व्यवस्था के अधीन महिला गवाह को पुरुष गवाह से मिलने और उससे बार-बार बातें करने का अवसर नहीं मिलता, जिसके कारण लेन-देन के बारे में उसकी याददाश्त ताज़ा होने की संभावना बहुत कम रहती है। याददाश्त को ताज़ा करने वाले इस अवसर की कमी को दूर करने के लिए, समझदारी से यह प्रावधान (निर्देश) दिए गए हैं कि जहां केवल एक पुरुष गवाह उपलब्ध हो वहाँ दो महिला गवाहों को भी बुलाया जाए ताकि एक-दूसरे को याद दिला सकें जैसा कि स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है।

यह प्रावधान (निर्देश) केवल गवाह-सबूत के संरक्षण से संबंधित हैं। गवाह चाहे पुरुष हों या महिला उनके द्वारा दी जाने वाली गवाहियों के महत्व से उनका कोई सरोकार नहीं। एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है। मान लीजिए कि एक पुरुष गवाह और दो महिला गवाहों द्वारा सत्यापित (प्रमाणित) दस्तावेज़ में कोई विवाद हो जाता है और मामला काज़ी के पास जाता है। बाद में पता चलता है कि दो महिला गवाहों में से एक की इस बीच मृत्यु हो गई है। पुरुष गवाह और जीवित महिला गवाह से अदालत में बयान लिया गया। न्यायधीश (काज़ी) ने पाया के लेन-देन की शर्तों से संबंधित उन दोनों के दिए विवरण बिल्कुल भी मिलते नहीं थे। अत: स्थिति के हर पहलू पर विचार करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि पुरुष की तुलना में महिला का ब्यान अधिक विश्वसनीय है। ऐसी स्थिति में

क़ाज़ी की ज़िम्मेदारी है कि महिला की गवाही को स्वीकार (भरोसा) करते हुए उसकी गवाही को पुरुष की गवाही पर प्राथमिकता दे। यहां किसी महिला के पक्ष में या उसके विपरीत भेदभाव करने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता।

पुरुषों और महिलाओं की सुरक्षा

पुरुष और महिला एक दूसरे के लिए इलाही नेमत (दिव्य वरदान) हैं। और इस दृष्टिकोण से उसे हृदय को संतुष्ट करने और ख़ुदा की प्रसन्नता प्राप्त करने का साधन मानकर इसके मूल्य (महत्व) को समझना चाहिए। जिसने उसे पैदा किया है वही उन दोनों की कमज़ोरियों तथा उनकी शक्तियों (क्षमताओं) से भली-भांति परिचित है, और उसने अपनी कृपा (वरदान) से दोनों को अपनी कमज़ोरियों को ढांपने (छिपाने) और अपनी ताकत को विकसित करने के लिए आवश्यक निर्देश दिए हैं। उत्पात (उपद्रव) और विनाश वस्तुतः इन निर्देशों की अवहेलना का ही परिणाम है। इन निर्देशों का दृढ़तापूर्वक पालन करने से ही जीवन शांतिमय और आनंदमय हो जाता है। क़ुर्आन मजीद में फ़रमाया गया है -

وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنْسَانَ وَنَعْلَمُ مَا تُوَسْوِسُ بِهِ نَفْسُهُ

(सूरह क़ाफ़- 50/17)

अर्थात "और निःसन्देह हमने मनुष्य को पैदा किया और हम जानते हैं कि उसका मन उसे कैसे-कैसे भ्रम में डालता है।"

إِنَّا خَلَقْنَا الْإِنْسَانَ مِنْ نُطْفَةٍ أَمْشَاجٍ نَبْتَلِيهِ فَجَعَلْنَاهُ سَمِيعًا بَصِيرًا ۔

إِنَّا هَدَيْنَاهُ السَّبِيلَ إِمَّا شَاكِرًا وَإِمَّا كَفُورًا (अद्दहर- 76/3-4)

अर्थात "नि:सन्देह हमने मनुष्य को ऐसे वीर्य से पैदा किया जिसे हम विभिन्न प्रकार की आकृतियों में ढालते हैं। फिर उसे हमने सुनने (और) देखने वाला बना दिया। नि:सन्देह हमने उसे सीधे रास्ते की ओर निर्देशित किया। चाहे (वह) शुक्र गुज़ार बनते हुए (उस पर चले) चाहे नाशुक्र गुज़ार बनते हुए।"

मानव हृदय क्योंकि कान, आंख (श्रवण, दृष्टि) इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से विचारों को अवशोषित करता है और अच्छाई या बुराई की ओर प्रेरित करता है इसलिए उसे इस प्रकार जागृत किया गया है।

وَلَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهِ عِلْمٌ ۚ إِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ
أُولَٰئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُولًا ﴿٣٨﴾ (बनी इस्राईल- 17/37)

अर्थात "और उस का अनुसरण न कर जिसका तुझे ज्ञान नहीं। नि:सन्देह कान और आँख और दिल में से हर एक के बारे में तुझ से पूछा जाएगा।"

अत: इन ज्ञानेन्द्रियों को प्रयोग में लाना और उन के बारे में सावधान रहना ही वास्तव में तक़वा (ख़ुदा से डरने) की भावना है। अल्लाह तआला ने आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह आदेश दिया है कि :

قُلْ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ يَغُضُّوْا مِنْ اَبْصَارِهِمْ وَيَحْفَظُوْا فُرُوْجَهُمْ ۚ
ذٰلِكَ اَزْكٰى لَهُمْ ۚ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا يَصْنَعُوْنَ ﴿٣١﴾ وَقُلْ لِّلْمُؤْمِنٰتِ
يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ وَيَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَلَا يُبْدِيْنَ
زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلٰى جُيُوْبِهِنَّ ۖ
وَلَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا لِبُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اٰبَآئِهِنَّ اَوْ اٰبَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ

اَوْ اٰبَنَآءِ بِهِنَّ اَوْ اَبْنَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ
بَنِيْٓ اَخَوٰتِهِنَّ اَوْ نِسَآءِ هِنَّ اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ اَوِ التّٰبِعِيْنَ غَيْرِ
اُولِي الْاِرْبَةِ مِنَ الرِّجَالِ اَوِ الطِّفْلِ الَّذِيْنَ لَمْ يَظْهَرُوْا عَلٰى عَوْرٰتِ
النِّسَآءِ ۠ وَلَا يَضْرِبْنَ بِاَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا يُخْفِيْنَ مِنْ زِيْنَتِهِنَّ ؕ
وَتُوْبُوْٓا اِلَى اللّٰهِ جَمِيْعًا اَيُّهَ الْمُؤْمِنُوْنَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿٣٢﴾

(सूरह अन्नूर- 24/31-32)

अर्थात् "मोमिनों को कह दे कि अपनी आँखें नीची रखा करें और अपने गुप्तांगो की सुरक्षा किया करें। यह बात उनके लिए अधिक पवित्रता का साधन है। निःसन्देह अल्लाह, जो वे करते हैं उससे सदा अवगत रहता है। और मोमिन स्त्रियों से कह दे कि वे अपनी आँखें नीची रखा करें और अपने गुप्ताँगों की सुरक्षा करें तथा अपनी सुन्दरता प्रकट न किया करें। सिवाय इसके कि जो उसमें से स्वयं प्रकट हो जाए। और अपने सीने पर अपनी ओढ़नियाँ डाल लिया करें। और अपनी सुंदरता को प्रकट न किया करें। सिवाय अपने पतियों के समक्ष अथवा अपने पिता या अपने पति के पिता या अपने पुत्रों या अपने पति के पुत्रों या अपने भाइयों या अपने भाइयों के पुत्रों या अपनी बहनों के पुत्रों या अपनी जैसी स्त्रियों या अपने अधीनस्थ पुरुषों या पुरुषों में ऐसे सेवकों (के समक्ष) जो कोई (यौन सम्बन्धी) इच्छा नहीं रखते या ऐसे बच्चों के (के समक्ष) जो स्त्रियों के छुपे हुए अंगों के बारे में बेख़बर हैं। और वे अपने पाँव को धरती पर इस प्रकार न पटकें कि (लोगों पर) उसे प्रकट कर दिया जाए जिसे (स्त्रियाँ साधारणतया) अपनी सुंदरता में से छिपाती हैं। और हे मोमिनों तुम सब के सब अल्लाह की ओर

प्रायश्चित करते हुए झुको ताकि तुम सफ़ल हो जाओ।"

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِيَسْتَاْذِنْكُمُ الَّذِيْنَ مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ وَالَّذِيْنَ لَمْ يَبْلُغُوا الْحُلُمَ مِنْكُمْ ثَلٰثَ مَرّٰتٍ ؕ مِنْ قَبْلِ صَلٰوةِ الْفَجْرِ وَحِيْنَ تَضَعُوْنَ ثِيَابَكُمْ مِّنَ الظَّهِيْرَةِ وَمِنْۢ بَعْدِ صَلٰوةِ الْعِشَآءِ ۗ ثَلٰثُ عَوْرٰتٍ لَّكُمْ ؕ لَيْسَ عَلَيْكُمْ وَلَا عَلَيْهِمْ جُنَاحٌۢ بَعْدَهُنَّ ؕ طَوّٰفُوْنَ عَلَيْكُمْ بَعْضُكُمْ عَلٰى بَعْضٍ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿٥٩﴾ (अन्नूर - 24/59)

अर्थात "हे वे लोगो जो ईमान लाए हो तुम में से वह जिनके तुम स्वामी हो और वह जो तुम में से अभी वयस्क नहीं हुए, चाहिए कि वे तीन समयों में (तुम्हारे कमरों में प्रविष्ट होने से पूर्व) तुम से अनुमति लिया करें। सुबह की नमाज़ से पूर्व और उस समय जब तुम दोपहर के समय (अतिरिक्त) वस्त्र उतार देते हो और इशा की नमाज़ के बाद। यह तीन तुम्हारे पर्दे के समय हैं। इनके अतिरिक्त (बिना अनुमति आने जाने पर) न तुम पर कोई पाप है, न उन पर। क्योंकि तुम में से कुछ लोग कुछ लोगों के पास आवश्यकतानुसार अधिकांश आते-जाते रहते हैं। इसी प्रकार अल्लाह आयतों को तुम्हारे लिए खोल-खोल कर वर्णन करता है। और अल्लाह स्थायी ज्ञान रखने वाला (और) परम युक्तिवान है।"

وَاِذَا بَلَغَ الْاَطْفَالُ مِنْكُمُ الْحُلُمَ فَلْيَسْتَاْذِنُوْا كَمَا اسْتَاْذَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿٦٠﴾

(अन्नूर- 24/60)

अर्थात "और जब तुम्हारे बच्चे नौजवानी की आयु को पहुँच जाएँ तो वह उसी प्रकार अनुमति लिया करें जिस प्रकार उनसे पहले लोग अनुमति लेते रहे। इसी प्रकार अल्लाह तुम्हारे लिए अपनी आयतों को खोल-खोल कर वर्णन करता है। और अल्लाह सर्वज्ञ (और) परम युक्तिवान है।"

وَالْقَوَاعِدُ مِنَ النِّسَآءِ الّٰتِیْ لَا یَرْجُوْنَ نِکَاحًا فَلَیْسَ عَلَیْهِنَّ جُنَاحٌ اَنْ یَّضَعْنَ ثِیَابَهُنَّ غَیْرَ مُتَبَرِّجٰتٍۭ بِزِیْنَةٍ ؕ وَاَنْ یَّسْتَعْفِفْنَ خَیْرٌ لَّهُنَّ ؕ وَاللّٰهُ سَمِیْعٌ عَلِیْمٌ ﴿۶۱﴾ (अन्-नूर- 24/61)

अर्थात "और वह स्त्रियाँ जो बूढ़ी हो चुकी हैं और विवाह के योग्य न हों यदि वे अपने (अतिरिक्त) कपड़े (सुंदरता का प्रदर्शन न करते हुए) उतार दें तो उन पर कोई पाप नहीं। और यदि वे (इससे) बचें तो उनके लिए उत्तम है। और अल्लाह बहुत सुनने वाला (और) बहुत जानने वाला है।"

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की पत्नियों के लिए कुछ विशेष निर्देश दिए गए हैं जिनमें सद्व्यवहार के उत्तम आदर्श प्रस्तुत हुए हैं और जिनका सभी मोमिन औरतों को अनुकरण करना चाहिए।

یٰۤاَیُّهَا النَّبِیُّ قُلْ لِّاَزْوَاجِكَ اِنْ کُنْتُنَّ تُرِدْنَ الْحَیٰوةَ الدُّنْیَا وَزِیْنَتَهَا فَتَعَالَیْنَ اُمَتِّعْکُنَّ وَاُسَرِّحْکُنَّ سَرَاحًا جَمِیْلًا ﴿۲۹﴾ وَاِنْ کُنْتُنَّ تُرِدْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَالدَّارَ الْاٰخِرَةَ فَاِنَّ اللّٰهَ اَعَدَّ لِلْمُحْسِنٰتِ مِنْکُنَّ اَجْرًا عَظِیْمًا ﴿۳۰﴾ یٰنِسَآءَ النَّبِیِّ مَنْ یَّاْتِ مِنْکُنَّ بِفَاحِشَةٍ مُّبَیِّنَةٍ یُّضٰعَفْ لَهَا الْعَذَابُ ضِعْفَیْنِ ؕ وَکَانَ ذٰلِكَ

عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرًا ﴿٣٠﴾ وَمَنْ يَّقْنُتْ مِنْكُنَّ لِلّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ وَتَعْمَلْ صَالِحًا
نُّؤْتِهَآ اَجْرَهَا مَرَّتَيْنِ ۙ وَاَعْتَدْنَا لَهَا رِزْقًا كَرِيْمًا ﴿٣١﴾

(अल्-अहज़ाब- 33/29-32)

अर्थात "हे नबी! अपनी पत्नियों से कह दे, कि यदि तुम संसार का जीवन और उसकी सुन्दरता को चाहती हो तो आओ मैं तुम्हें आर्थिक लाभ पहुँचाऊँ और उत्तम ढंग से तुम्हें विदा करूँ। और यदि तुम अल्लाह को और उसके रसूल को और परलोक के घर को चाहती हो तो निःसन्देह अल्लाह ने तुम में से अच्छे कर्म करने वालियों के लिए बहुत बड़ा प्रतिफ़ल तैयार किया है। हे नबी की पत्नियो! जो भी तुम में से खुली-खुली अश्लीलता में पड़ेगी उसके लिए अज़ाब को दोगुना बढ़ा दिया जाएगा और यह बात अल्लाह के लिए सरल है। और तुम में से जो अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करेगी और पुण्यकर्म करेगी हम उसे उसका प्रतिफल दुगना देंगे। और उसके लिए हमने बहुत सम्मानजनक जीविका तैयार की है।"

يٰنِسَآءَ النَّبِيِّ لَسْتُنَّ كَاَحَدٍ مِّنَ النِّسَآءِ اِنِ اتَّقَيْتُنَّ فَلَا تَخْضَعْنَ
بِالْقَوْلِ فَيَطْمَعَ الَّذِيْ فِيْ قَلْبِهٖ مَرَضٌ وَّقُلْنَ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ﴿٣٢﴾ وَقَرْنَ
فِيْ بُيُوْتِكُنَّ وَلَا تَبَرَّجْنَ تَبَرُّجَ الْجَاهِلِيَّةِ الْاُوْلٰى وَاَقِمْنَ الصَّلٰوةَ
وَاٰتِيْنَ الزَّكٰوةَ وَاَطِعْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ ؕ اِنَّمَا يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُذْهِبَ
عَنْكُمُ الرِّجْسَ اَهْلَ الْبَيْتِ وَيُطَهِّرَكُمْ تَطْهِيْرًا ﴿٣٣﴾ وَاذْكُرْنَ مَا
يُتْلٰى فِيْ بُيُوْتِكُنَّ مِنْ اٰيٰتِ اللّٰهِ وَالْحِكْمَةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ
لَطِيْفًا خَبِيْرًا ﴿٣٤﴾ (अल्-अहज़ाब- 33/33-35)

अर्थात "हे नबी की पत्नियो! तुम कदापि साधारण स्त्रियों जैसी

नहीं हो बशर्ते कि तुम तक़वा (संयम) धारण करो। अतः हाव भाव के साथ बात न किया करो अन्यथा वह व्यक्ति जिस के मन में दुर्भावना है, (अनुचित) लालसा करने लगेगा। और सदैव अच्छी बात कहा करो। और अपने घरों में ही रहा करो और पुराने जाहिलीयत के ज़माने की तरह अपनी सुन्दरता को प्रदर्शित न किया करो। और नमाज़ को नियमानुसार क़ायम करो और ज़कात अदा करो और अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करो। हे (नबी के) घरवालो निःसन्देह अल्लाह चाहता है कि तुम से प्रत्येक प्रकार की गंदगी को दूर कर दे और तुम्हें अच्छी प्रकार से पवित्र कर दे। और अल्लाह की आयतों और विवेकपूर्ण बातों को याद रखो जिनकी तुम्हारे घरों में चर्चा की जाती है। निःसन्देह अल्लाह अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी (और) हर बात का ज्ञान रखने वाला है।"

उपरोक्त निर्देश इसलिए बनाए गए हैं ताकि पुरुषों और महिलाओं के नैतिक मूल्यों का स्तर (सद्व्यवहार) सबसे ऊँचा हो, और प्रत्येक स्थिति में दोनों गरिमा और आत्म-संयम के साथ जीवन व्यतीत करें। गंभीरता, सादगी और पवित्रता इस्लामी समाज की विशेष पहचान है। पुरुषों और महिलाओं को स्वतंत्र और अनियंत्रित मेल-जोल से रोका गया है। और दोनों से एक सीमा तक शिष्टाचार अपनाने का आग्रह किया जाता है। महिलाएं सभी प्रकार की कष्दायक परिस्थितियों के भय से सुरक्षित रहनी चाहिए। जैसा कि आदेश है -

يَٰٓأَيُّهَا ٱلنَّبِيُّ قُل لِّأَزۡوَٰجِكَ وَبَنَاتِكَ وَنِسَآءِ ٱلۡمُؤۡمِنِينَ يُدۡنِينَ
عَلَيۡهِنَّ مِن جَلَٰبِيبِهِنَّۚ ذَٰلِكَ أَدۡنَىٰٓ أَن يُعۡرَفۡنَ فَلَا يُؤۡذَيۡنَۗ وَكَانَ
ٱللَّهُ غَفُورٗا رَّحِيمٗا ﴿٦٠﴾ (अल्-अहज़ाब- 33/60)

अर्थात "हे नबी! तू अपनी पत्नियों और अपनी बेटियों और मोमिन स्त्रियों से कह दे कि (जब वह बाहर निकलें) अपनी बड़ी चादरों को अपने सरों पर से घसीट कर अपने सीनों तक ले आया करें। यह इस बात के अधिक निकट है कि वे पहचानी जाएं और उन्हें कष्ट न दिया जाए। और अल्लाह बहुत क्षमा करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है।"

पुरुषों और महिलाओं के अनियंत्रित और अनियमित (स्वतंत्र रूप से) मेल-जोल, और पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए महिलाओं की स्वयं को सजाने-संवारने की प्रवृत्ति पश्चिमी समाज के लिए एक अभिशाप बन चुकी है। इसके परिणामस्वरूप, शालीनता और सभ्य आचरण से जुड़ी सभी मान्यताओं को त्याग दिया गया है, और पुरानी, बहुमूल्य परंपराओं का उपहास किया जा रहा है।

यह बहुत ही चिंता का विषय है कि पश्चिमी प्रभाव से प्रभावित कुछ मुस्लिम इस आत्मघाती प्रवृत्ति का विरोध नहीं कर सके हैं, जो पश्चिम में प्रचलित है। यह ईमानदारी से आशा की जाती है कि इस सोच और व्यवहार में निहित खतरों को शीघ्र ही पहचाना जाएगा और इस्लामिक मूल्यों की महत्ता को समझते हुए उन्हें अधिक दृढ़ता से अपनाया जाएगा।